ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला—संस्कृत ग्रन्थाङ्क १६

आचार्य दामनन्दी विरचित

# पुराणसारसंग्रह

[ भाग २ ]

सम्पादक

पं० गुलाबचन्द्र जैन, व्याकरणाचार्य, एम० ए०

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

# प्राक्कथन

पुराणसारसंग्रह प्रथम भागके प्रकाशित होनेके कुछ ही दिन बाद उसके इस दूसरे भागको प्रकाशित होता हुआ देखकर हमें प्रसन्नता होती है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा दूसरी भाषाओंका अभी इतना विपुल जैन साहित्य अप्रकाशित दशामें पड़ा हुआ है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। वस्तुतः अभीतक हम पूरी तरहसे यह भी नहीं जान सके हैं कि किस भाषाका हमारा साहित्य कितना है, उसके लेखक कौन हैं और वह किस कालकी अमर कृति है। एक माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाको छोड़कर पहले कोई ऐसी साहित्यिक संस्था भी नहीं थी जो इस ओर ध्यान देती। अन्य जो भी प्रकाशक थे वे व्यापारी थे। उन्हें उसी साहित्यका प्रकाशन करना इष्ट था जो अर्थार्जनमें सहायता पहुँचाता था। किन्तु जैसे-जैसे समय बीता, कुछ महानुभावोंका ध्यान इधर आकर्षित हुआ और अपने मौलिकरूपमें तथा भाषान्तरके साथ उसे प्रकाशित करनेवाली कई संस्थाएँ खडी की गईं। फिर भी उनके पास इतने विपुल साधन नहीं कि वे प्रकाशन और सम्पादनसम्बन्धी सब आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सकें। भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापनाके बाद अब अवश्य ही यह आशा की जा सकती है कि हमें अपना पूरा साहित्य प्रकाशित दशामें देखनेको मिल सकेगा।

उस हुण्डावसर्पिणी कालमें जैनधर्मके २४ तीर्थङ्कर हुए हैं उनमेंसे ऋषभदेव, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर इन छह तीर्थंकरोंने सार्वजनिकरूपमें पर्याप्त प्रसिद्धि पाई है। उन्हीं छह तीर्थंकरोंके चरितका उनके पूर्वभवोंके साथ आचार्य दामनन्दीने इस ग्रन्थमें संकलन किया है। उनका यह संकलन उनके कालतक उपलब्ध

# विषयानुक्रम

## नेमिनाथ-चरित

### प्रथम सर्ग



### द्वितीय सर्ग

## चतुर्थ सर्ग

## द्वितीय सर्ग

## चतुर्थ सर्ग



## पञ्चम सर्ग



# वर्धमान-चरित

## प्रथम सर्ग

## द्वितीय सर्ग

## तृतीय सर्ग



## चतुर्थ सर्ग

## पञ्चम सर्ग

# पुराणसार-संग्रह

# नेमिनाथचरितम्

## प्रथमः सर्गः

# नेमिनाथचरित

## प्रथम सर्ग

मैं, यदुवंश रूपी विशाल चक्केकी धुराके समान जिनवर अरिष्टनेमिको नमस्कार कर, पूर्वभवोकी नामावलीके साथ उनके चरितका वर्णन करता हूँ। श्रुतकेवली सुधर्म स्वामीने जम्बूस्वामी को यह चरित सुनाया था। पुराणोमें कहे गये इस उत्तम और निर्दोष इतिहास (चरित) को आप सब सुने॥ १-२॥

श्रेष्ठ जम्बूवृक्षसे उपलक्षित इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमे कुशाग्रपुर नामका एक मनोहर देश था जहाँ शौरीपुर नामका नगर था। वहाँ अत्यन्त बलवान् तथा अपने शत्रुओंके मदको नष्ट करने वाला एक बड़ा राजा था। वह 'शूर' नामसे विख्यात था। उसकी रानीका नाम धारिणी था।॥ ३-४॥

उनसे दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र अन्धकवृष्णि अति बुद्धिमान् था। दूसरेका नाम नरपतिवृष्णि था। इस भूतल पर वे दोनो ऐसे मालूम पड़ते थे, मानो सूर्य और चन्द्रमा ही हो। राजा शूरने अपने ज्येष्ठ पुत्रको अधिराज पद तथा छोटे लड़केको युवराज पद देकर सुप्रतिष्ठित मुनिराजके चरणोंमें जिनदीक्षा ले ली। रानी धारिणीके वे दोनो पुत्र संगठित हो, अविरोध भावसे अपने राज्यकी धुराको ढो रहे थे। जैसे कि बड़ी धुराको दो धुर्य अर्थात् बैल परस्पर ईर्ष्याभावसे रहित होकर ढोते हैं॥ ५-७॥

अन्धकवृष्णिके सुभद्रा नामकी एक प्रिय रानी थी। उससे कुन्ती और माद्री नामकी दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई जो कि स्त्रियोके श्रेष्ठ गुणोकी मंजूषा अर्थात् पिटारी थीं। तथा उनके दश सुन्दर पुत्र हुए जिनका नाम समुद्रविजय, अक्षोभ्य, स्तिमितसागर,

हिमवान्, विजय, अचल, धारण, पूरण, अभिनन्दन और वसुदेव था। वे सब अपने विपुल पराक्रमके लिए विख्यात तथा यथार्थ नामवाले थे ॥ ८–१० ॥ नरपतिवृषिणके पद्मावती नामकी एक अति रूपवती रानी थी। उससे राजाको उग्रसेन, महासेन और सुरसेन नामके तीन पुत्र हुए ॥ ११ ॥

एक समय उस नगरके गन्धमादन नामके उद्यानमें सुप्रतिष्ठित नामके मुनिराज आये और वहाँ प्रतिमायोग धारण कर बैठे। उनको देखकर सुदर्शन नामका यक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उनके ऊपर अनेक प्रकारके घोर उपसर्ग किये। पर मुनिराज ध्यानसे न डिगे और उन्होंने अन्तमे केवलज्ञान प्राप्त किया ॥१२-१३॥ उनकी पूजाके लिए, कल्पवृक्षकी मालासे सुशोभित मुकुट पहने हुए तथा अनेक देव और देवियोंसे घिरे हुए सभी इन्द्र वहाँ आये। उनको आया हुआ देखकर राजा अन्धकवृष्णि भी स्वयं अपनी रानी और पुत्रोंके साथ प्रसन्न होता हुआ नगरसे निकला और देवोंके बीचमे बैठे हुए उन मुनिराजकी वन्दना कर इन्द्रोंके साथ बैठ गया। उन विगतसंशय मुनिराजसे उसने प्रश्न पूछा कि भगवन्! हमारा वंश हरिवंश नामसे क्यों कहलाता है ॥१४-१६॥

तब मुनिराजने उससे कहा कि यहाँ वत्स देशकी राजधानी कौशाम्बीमें विजय नामसे विख्यात एक राजा था उसके एक रानी थी जिसका नाम तारा था ॥१७॥ उसी नगरमें सुमुख नामका एक सेठ रहता था, वह अपने आश्रित वीरक सेठकी पत्नी वनमालाको देखकर मोहित हो गया। उसने कुछ उपायोसे वनमालाको वशमें कर लिया ॥१८॥ इधर वनमालाके पति वीरकने अपनी पत्नीके वियोग-दुखसे तथा इस घोर अपमानसे दुखी हो, भगवान् शीतलनाथके तीर्थकालमें विद्यमान प्रोष्ठिलाचार्यके समीप मुनिव्रत

ले लिये और बाह्यसिद्धिवाले, तथा कायका क्लेश देनेवाले तप करने लगा, जिससे वह सौधर्म स्वर्गमे तीन पल्यकी आयुवाला देव हुआ ॥१९-२०॥

किसी समय सेठ सुमुख और वनमालाने वरधर्म नामके मुनिराजकी अच्छी तरह पूजा कर पापोको नाश करनेवाला उत्तमदान-आहारदान दिया। एक दिनकी वात है कि वे दोनों शयनागारमें सुखपूर्वक सोये हुए थे कि उनके ऊपर आकाशसे बिजली गिरी और दोनो मरकर हरिवर्ष देशमें पति-पत्नीके रूपमे हुए ॥२१-२२॥

किसी समय वीरकके जीव देवने आकाश-मार्गसे जाते हुए उन दोनोको देखा और पूर्वभवके स्मरणसे उन दोनोको बलपूर्वक उठा ले गया ॥२३॥

इधर भारतवर्षमें चम्पानगरीके राजा चन्द्रकीर्तिका स्वर्गवास हो गया था, इसलिए वह नगरी राजारहित थी। उस देवने सुमुखके जीवको वहाँ मार्कण्ड नामका राजा बना दिया तथा अपने स्थान चला गया। उस राजाने पृथ्वीपर बहुत समय तक शासन किया और मांस-सेवनके कारण मरकर नरक गया। उसके सिंहके समान पराक्रमी हरि नामका पुत्र हुआ ॥२४-२५॥ उसके बाद उसका पुत्र महागिरि तथा महागिरिसे हिमगिरि तथा क्रमसे नरपति, वसुगिरि आदि राजा उस कुलमे हुए ॥२६॥ इस तरह बहुत काल बीत जानेके बाद इसी कुलमें तुम्हारा पिता राजा हुआ, जिसने कि शौरीपुर नामका नगर बसाया और वहाँ बारह वर्ष तक राज्य किया ॥२७॥ क्योकि तुम्हारा पूर्वज पहले हरिवर्ष देशसे आया था, इसलिए तुम्हारा वंश इस लोकमे हरिवंश नामसे विख्यात हुआ ॥२८॥

ऐसा कहने पर राजाने मुनिराजसे अपने पूर्व-भव पूछे। तब उन केवलज्ञानी मुनिराजने इस प्रकार कहा:—भगवान् ऋषभदेवके तीर्थकालमें एक समय अयोध्या नगरीमें अनन्तवीर्य राजा राज्य करता था। वहीं बत्तीस करोड़ दीनारका स्वामी सुरेन्द्रदत्त नामका एक जैन सेठ भी रहता था। उस सेठका मित्र रुद्रदत्त नामका एक ब्राह्मण था ॥२९-३०॥ वह सेठ तिथि पर्व-महोत्सवोंके दिनोंमे जिन-पूजाके निमित्त बारह वर्षके लिए उस ब्राह्मणको एक, दो और आठके हिसाब से दीनार देकर व्यापार करने विदेश चला गया पर उस ब्राह्मणने वह सब धन वेश्या तथा जुएमें नष्ट कर दिया और वहीं चोरी करने लगा ॥३१–३२॥ किसी समय नगरके रक्षक सिपाहियोंने उसे पकड़ लिया पर सेठके ख्यालसे उसे छोड़ दिया। उसके बाद वह उल्कामुख वनमें जाकर चोरी करता हुआ, भीलोंके साथ घूमने लगा। ऐसा कर्म करते हुए वह श्रेणिक नाम सेनापति-द्वारा मारा गया तथा रौरव नामके नरकमें जन्म लिया। देवद्रव्यको नष्ट करनेके कारण उसने नरकमे बहुत दुःख भोगे। उस नरकमे तैंतीस सागर तक पापफल भोगकर वहाँसे निकला और बहुत काल तक पशुगति तथा नरकोंमें चक्कर लगाता फिरा ॥ ३३–३५ ॥

इसके बाद पापकर्मोंके उपशम होनेसे वह धनञ्जय राजाके हस्तिनापुर नगरमे कापिष्ठलायन ब्राह्मण तथा अनुन्दरी ब्राह्मणीका पुत्र हुआ ॥ ३६ ॥ उसका नाम गौतम था और वह निर्धन था। उसके माता-पिता मर गये थे। एक समय भिक्षाके लिए घूमते हुए उसने वैश्रवण सेठके घरमे भोजन करते हुए समुद्रदत्त नामके मुनिको देखा। वह उनके पीछे-पीछे उनके ठहरनेके स्थानको गया और कहने लगा कि मुझे किसी तरह भिक्षा नहीं मिलती है इसलिए आप मुझे अपने वर्गमे मिला लीजिए ॥ ३७–३८ ॥ उन मुनिराजने उसे भव्य जीव जानकर दीक्षित कर लिया। उसने भी

एतस्मिन्नुत्पन्नावाप्नोदक्षीणमहानसं च देवैश्वर्यम् ।
भूत्वा बीजबुद्धिं पदानुसारिणमपि च तपसः ॥४०॥
सर्वांगं तत्समाख्या गणधरत्व चास्य सम्पाद्य गुरु ।
पतिरथ च जिनरूपं सुविशालमगात् तमाराध्य ॥४१॥
शिष्योऽपि च पञ्चाशद्वर्षसहस्राणि सत्तपः कृत्वा ।
तत्रैव समुपेते स्वगुरोरनुयानमिव कुर्वन् ॥४२॥

एक हजार वर्ष तक तपस्याकर विघ्नकारी कर्मोंको नष्ट किया। जिससे उस तपस्वीको अक्षीण महानस, देवऋद्धि, बीजबुद्धि तथा पदानुसारिणी ये चार लब्धियां प्राप्त हुई। अब वह गौतम ऋद्धि-सम्पन्न हो गया। गुरुने भी उसे आचार्य पद प्रदान किया और जिनकल्पको ग्रहण कर तथा चार आराधनाओंका आराधन कर सुविशाल नामके विमानमें अहमिन्द्र हुए ॥ ३९–४१ ॥

उन गौतमने भी पचास हजार वर्ष तक उत्तम तप करके उसी अहमिन्द्र विमानमें अहमिन्द्र पद पाया मानो वे अपने गुरुका अनुगमन-सा कर रहे हों। वहाँ छठवें ग्रैवेयक में २८ सागर तक अनुपम अहमिन्द्रके सुखोंको सतत भोगकर वहाँसे च्युत हो गौतमका जीव तुम अन्धकवृष्णि हुए हो और तुम्हारा गुरु मैं भी वहाँसे च्युत हो केवली हुआ हूँ ॥ ४२–४४ ॥

फिर राजाने अपनी दोनो पुत्रियो और पुत्रोंके पूर्वजन्म कहनेके लिए मुनिराजसे निवेदन किया। तव मुनिराजने इस प्रकार कहा—इस भारत क्षेत्रमें मलयदेशके भद्रिलनगरमें मेघरथ नामका राजा था। उसकी रानीका नाम सुभद्रा तथा पुत्रका नाम दृढ़रथ था। वही धनदत्त नामका सेठ रहता था उसकी सेठानी का नाम नन्दयशा था। उन दोनोंके सुदर्शना और सुज्येष्ठा नाम की दो पुत्रियाँ थीं तथा धनपाल, जिनपाल, देवपाल, अर्हद्दास, जिनदास, अर्हद्दत्त, जिनदत्त, प्रियमित्र और धर्मरुचि नामके नव पुत्र थे ॥ ४५–४८ ॥

मेघरथ राजाने सुदर्शन उद्यानमें आचार्य सुमन्दिरसे धर्मोपदेश सुनकर अपने पुत्रको राज्य देकर जिनदीक्षा ले ली ॥४९॥ राजाके साथ सेठने भी अपने पुत्रोंके साथ मुनि-दीक्षा ले ली तथा रानी सुभद्रा भी उस सेठकी पुत्रियोंके साथ सुदर्शना आर्यिका के पास आर्यिका हो गई ॥५०॥ भ्रमण करते हुए धनदत्त सेठ,

उपलभ्य च कैवल्यं वाराणस्यां प्रियं गोपण्डवने ।
श्रेष्ठी गुरुश्च राजा विहृत्य धीरास्त्रयोऽप्यन्ते ॥५१॥

आराध्य सप्तपञ्चद्वादशवर्षैः क्रमाद्ययुः सिद्धिम् ।
राजगृहसिद्धशैले नन्दयशाश्चापि धनमित्रम् ॥५२॥

संत्यज्य सुतमुदारं स्वगर्भदोपादनिर्गता पूर्वम् ।
परिबोधिता सुताभ्यां दीक्षित्वाऽऽगत्य राजगृहम् ॥५३॥ युग्मम्।

स्वसुतान् प्रायोपगतान् सिद्धशिलायामवेक्ष्य वन्दित्वा ।
तन्मातृजनवेच्छत् भवान्तरे स्नेहसम्बन्धात् ॥५४॥

सुमन्दिर गुरु और राजाको बनारसके गोषण्डवनमे चार आराध-नाओंका आराधन करते हुए अभीष्ट केवलज्ञान उत्पन्न हो गया तथा वे तीनों धीर वीर विहार करने लगे। अन्तमें राजगृहनगरके सिद्धपर्वतपरसे क्रमशः सात, पॉच और बारह वर्षके अन्तरालसे मोक्ष प्राप्त किया। इधर सेठकी पत्नी नन्दयशा अपने गर्भके कारण दीक्षा न ले सकी थी। सो उसने अपनी पुत्रियोके उपदेशसे अपने उदार पुत्र धनमित्रको छोड़कर, दीक्षा ले ली और ( भ्रमण करती हुई ) राजगृह आई ॥५१-५३॥ वहॉ सिद्ध पर्वतपर प्रायोप-गमन संन्यास धारणकर बैठे हुए अपने पुत्रोंकी वन्दना कर उनके स्नेह संबंधसे अगले जन्ममे भी उनकी माता बननेकी इच्छा की। तथा सुदर्शना और सुज्येष्ठा उन दोनो बहिनोने तपसे कृश शरीर अपने भाइयोको देखकर अगले भवमें उनकी सहोदरा ( बहिनें ) होनेका निदान किया ॥५४-५५॥

उन सबने आराधनाओंका आराधन कर देहत्यागकर अच्युत स्वर्गमें २२ सागर तक देवसुलभ सुखका भोग किया और वहॉसे च्युत होकर हे राजन् , वे सब तुम्हारी रानी, दोनो पुत्रियॉ और नव पुत्रोंके रूपमें हुए हैं ॥५६॥ [ वसुदेवका पूर्वभव इस प्रकार है ] पलाश ग्राममें एक ब्राह्मण [ का लड़का ] था। उसकी मॉ [ बचपन में ] मर गई थी और बाप भी [ गर्भावस्थाकालमे ] मर गया था। [ अपने शेष बान्धवोंसे तिरस्कृत हो ] उसने द्रुमवर मुनिके चरणोमें दीक्षा ले ली। और वैयावृत्त तपकर आयु समाप्त होनेपर महाशुक्र स्वर्गमें देव हुआ तथा वहॉ सोलह सागरकी आयु पाई। पीछे च्युत होकर तुम्हारा छोटा पुत्र वसुदेव हुआ है ॥५७-५८॥

इस प्रकार केवली-द्वारा कहे गये उपदेशोको सुनकर राजा अन्धकवृष्णिने अपने ज्येष्ठ पुत्र समुद्रविजयको राज्य देकर दीक्षा ले ली और तपस्या कर मोक्षपद पाया ॥५९॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके अरिष्टनेमिचरितमें हरिवंशोत्पत्ति नामका प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

# द्वितीयः सर्गः

राजा समुद्रविजयः शशास वसुधा ततो नृपतिनीत्या ।
शिवदेवीमिष्टतमामिष्टैरनुरञ्जयन्भोगैः ॥१॥

ऐन्द्रीप्रभृतिषु दिक्षु क्रमेण निर्यंस्तदा च वसुदेवः ।
इन्द्रादिवेषधारी विजहार विमोहयँल्ललनाः ॥२॥

राज्ञा बहिः प्रयाणान्निवारितो जनविरोधितेन पुनः ।
षण्मास्यबहिर्गमने वल्लभनाम्नाऽथ दुष्टकः ॥३॥

मन्त्रप्रयोगेनास्मात्प्रयास्य वसुधेश्वरात्मजाः बहुशः ।

# द्वितीय सर्ग

महाराज समुद्रविजय अपनी रानी शिवादेवीको नाना प्रकार के वांच्छित भोगोसे प्रसन्न करते हुए इस पृथ्वीका राजनीतिपूर्वक अच्छी तरह शासन करने लगे ॥ १॥ उनका छोटा भाई वसुदेव नाना प्रकारके इन्द्रादि वेपोको धारण कर नगरकी स्त्रियोंको मोहित करता हुआ पूर्व आदि सभी दिशाओंमे घूमता-फिरता था। यह वात पुरवासियोंने राजासे कही तो राजाने उन्हे छह महीने तक वाहर घूमनेसे मना कर दिया। एक समय वल्लभ नामके नौकरने यह वात वसुदेवसे व्यंगमें कह दी। तव वसुदेव मन्त्र साधनेके वहानेसे निकल भागे। और इस तरह वह वीर अनेकों राजाओ और विद्याधरोंकी सुन्दर-से-सुन्दर कन्याओके साथ विवाह करता हुआ खूव भ्रमण करने लगा ॥२-४॥ इसी कालमे स्वयंवर विधिसे उसने रोहिणीसे विवाह किया, तथा उसके साथ सुख भोग उससे वलदेव नाम पुत्र हुआ। इसके वाद वसुदेव शौरीपुरमे आकर शस्त्र विद्या सिखाने लगा ॥ ५ ॥

एक समय वह अपने शिष्य कंसके साथ राजगृहमें आया हुआ था। कि वहाँ उसने नगरके मध्यमें मगधराज ( जरासन्ध ) की एक वड़ी घोपणा इस प्रकार सुनी कि, जो मनुष्य सिहपुरमें जाकर सिहरथको जिन्दा ही पकड लेगा उसे मै अपनी पुत्रीके साथ इच्छित देश दूँगा ॥६-७॥ उस घोपणाको सुनकर अपने गुरुकी आज्ञासे कंसने झंडा पकड लिया और वसुदेवके द्वारा (विद्यासे) निर्मित पाण्डके दन्त सिहोके रथ पर चढ़कर युद्ध करने गया। वहाँ उसने अपने गुरुके द्वारा वनाये वाणोंसे सिहरथके सिहोकी नाकें ( जंजरें ) फाट दीं और कूदकर उसे पकड़ लिया ॥८-९॥

तब इन्द्रके समान, वसुदेव उस सिंहके समान सिंहरथको पिंजरसे बाँधकर और असहाय बनाकर ( मगध ) राजाके पास ले आया ॥ १० ॥

इस पर प्रसन्न होकर जरासन्धने उसे अपनी पुत्री जीवद्यशा से विवाह करनेको कहा। तब वसुदेवने कहा कि तुम्हारे शत्रुको मैंने नहीं पकड़ा, मेरे इस शिष्यने पकड़ा है। ११ ॥ यह सुन कर राजाने कंससे उसकी जाति पूछी तो कंसने कहा कि—कौशाम्बीमें शराब बनानेवाली मेरी माता रञ्जोदरी रहती है ॥ १२ ॥ जरासन्धने उसकी आकृतिसे यह जान कि यह शराब बनानेवाली का पुत्र नहीं हो सकता है इसलिए उसने रञ्जोदरीको बुलाया। रञ्जोदरीने आकर राजासे कहा कि—मैंने यमुनाके प्रवाहमें बहते हुए इसे पाया था और गुप्त रूपसे इसका लालन-पालन किया है। पीछे इससे रुष्ट हो मैंने इसे निकाल दिया। यह भी वहाँसे चलकर शस्त्र-विद्या सीखने लगा। इसलिए ( मैं इसकी माता नहीं हूँ ) यह पेटारी इसकी मां है। फिर उसने उस पेटीमें लगी नामकी मुहरको राजाके लिए दिखाया। राजाने इससे उसे उग्रसेनका पुत्र जानकर अपनी कन्या दे दी ॥१३–१५॥

कंस यह मालूम कर कि मुझे उत्पन्न होते ही छोड़ा गया है, अपने पिता उग्रसेन पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और कलिन्द-सेनाकी पुत्री जीवद्यशाके साथ मथुरा गया ॥ १६ ॥ वह पिताको पकड़कर नगर-द्वारके फाटक पर क़ैद कर दिया तथा अपने गुरुको गुरुदक्षिणा स्वरूप अपनी ( चचेरी ) बहिन देवकी विवाह दी ॥ १७ ॥

एक समय मथुरामें भिक्षाके लिए अतिमुक्तक नामके एक मुनि आये। उन्हें नमस्कारकर कंसकी रानीने काम-भावसे आगे खड़े होकर यह कहा कि देखो यह तुम्हारी बहिन देवकीका 'आनन्द-

वस्त्र' है। इस प्रकार मजाकमे उसने मुनिराजको वस्त्र दिखलाया ॥१८-१९॥ यह देख मुनिने कहा कि उसी देवकीके गर्भसे उत्पन्न बालक शीघ्र ही तुम्हारे पति और पिताका मारने वाला होगा। यह कहकर वे मुनि क्रुद्ध हो वहाँसे चले गये ॥ २० ॥ यह बात कंसने सुनी और उपाय सोच वसुदेवसे प्रणामकर यह वर माँगने लगा कि देवकीकी सन्तान मेरे ही घर हो। उदारचित्त उस वसु-देवने भी वर दे दिया पर पीछे सब वार्ता ज्ञात होने पर वह आम्रवनमे बैठे हुए अतिमुक्तक मुनिके समीप गया और उन्हे प्रणाम कर पूछने लगा कि-हे भगवन्! यह कंस किस कारणसे अपने पिताके शत्रु रूपमें उत्पन्न हुआ है। तब अतिमुक्तक मुनिने विशेष आग्रह पर कंसके पूर्वभव इस प्रकार कहे ॥ २१-२३ ॥

पूर्वकालमे गंगा और नन्दावती इन दो महानदियोके संगम-पर जटाल कौशिक वनमें वशिष्ठ नामका एक बड़ा तपस्वी रहता था। उसने पञ्चाग्नि तप करते समय अग्निमें लड़कीके साथ जलते हुए एक मरी सर्पिणीको देखा। इससे उस तपस्वीको वैराग्य हो गया और वीरभद्र मुनिराजका शिष्य हो गया ॥ २४-२५ ॥ एक समय पर्वतके ऊपर आतापन योग धारण कर वे मुनि-राज खड़े थे कि उनके तप बलसे कम्पित हो सात वनदेवता वहाँ आये और मुनिराजसे बोले कि कहिये क्या करें? उस समय मुनिने उन्हे यह कहकर लौटा दिया कि मुझ परिग्रहहीनको भला कौन-सा काम है। किसी समय राजा उग्रसेनने उन मुनिराजको अपना अतिथि बनाना चाहा इसलिए उसने नगरमे प्रविष्ट उन मुनिके लिए 'दूसरे भिक्षा न देवें' इस बात की घोषणा करा दी। पर वह राजा, (तीनो बार ही) कभी दूतके कारण, कभी अग्निके कारण, कभी हाथीके उपद्रवके कारण मुनिराजको भिक्षा देना भूल गया ॥ २६-२८ ॥

इस प्रकार त्रैमासिक पारणाओमे अन्न न पाकर वे मुनिराज थककर नगरके द्वारपर बैठे थे कि उन्हे देखकर एक नागरिकने कहा—बड़े दुखकी बात है कि यह पापी राजा न तो स्वयं भिक्षा देता है न दूसरे दाताओंको देने देता है। यह सुनकर मुनि क्रुद्ध हो गये और उन पूर्व वन-देवताओको बुलाया और उनसे कहा कि अगले जन्ममे आप लोगोका कर्म है। देवताओने भी कहा कि हम लोग आपका काम करेंगे। यह कह वे सब लौट गये। मुनि भी निदान सहित मरा तथा उग्रसेनकी रानी पद्मावतीके गर्भमे आया और रानीको एक दोहला पैदा किया। गर्भ दोषके कारण रानीको राजाके पेटकी त्रिवलियोका मांस खानेकी इच्छा हुई। तब मंत्रियोने किसी उपायसे रानीका दोहला पूर्ण किया। इधर रानीने पुत्र उत्पन्न होते ही कॉसोकी पेटीमे रखकर यमुना नदीमे बहा दिया ॥२९–३३॥ तब कोशाम्बीमे किसी मदिरा बनाने वालोने इसे उठाकर पाला-पोसा तथा इसका नाम कंस रखा। फिर उसने इसे निकाल दिया। कंस भी शौरीनगरमे आकर तुमसे शस्त्र विद्या सीखकर प्रवीण हो गया। और हे वसुदेव! तुम्हारी कृपासे इसने सिहरथको जीत लिया ॥ ३४–३५ ॥ तथा जरासन्धकी पुत्रीके साथ विवाह कर अपने पूर्वभवके वैरके कारण ही उस दुष्टने मथुरामे आकर अपने पिता उग्रसेनको क़ैद किया है ॥ ३६ ॥

ऐसा कहनेपर उन अवधिज्ञानी मुनिराजसे वसुदेवने फिर पूछा कि भगवन्! पूर्वभवोंमें ऐसा क्या कारण हुआ कि मेरा पुत्र कसको मारनेवाला होगा? यह पूछने पर मुनिने कहा कि देवकीका सातवॉ पुत्र अपनी महिमासे कंस आदि शत्रुओको मारकर सम्पूर्ण पृथ्वीका भोग करेगा। दूसरे भी जो छह पुत्र हैं, सब चरम देहधारी है, उन्हें किसी प्रकारकी विपत्ति नहीं होगी।

तुम भी सोच न करो, उन महात्माओके पूर्वजन्मोको सुनो, इतना कहकर मुनिराज इस प्रकार कहने लगे ॥ ३७–३९ ॥

इसी शूरसेन देशमें शूरसेन राजासे भोग्य इसी मथुरा नगरीमे पृथ्वीमे सूर्यके समान प्रतापी भानु नामका एक विख्यात सेठ था। वह १२ करोड़ धनका स्वामी था। उसकी पत्नी यमुनादत्ता थी। उससे सर्वगुणसम्पन्न सात पुत्र हुए। उसके नाम क्रमसे सुभानु, भानुयश, भानुषेण, शूर, सूरदेव, सूरदत्त और शूरसेन थे ॥ ४०–४२ ॥ एक समय उस सेठने अभयनन्दि मुनिसे धर्मोपदेश सुन दीक्षा ले ली तथा सेठानीने भी जिनदत्ता आर्यिकाके समीप आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥ ४३ ॥ सेठके वे पुत्र अपने पिताके धनको वेश्या, शराब, जुआ आदिमे नष्टकर निर्धन हो गये, तथा चोरी करनेके लिए उज्जयिनी नगरमे घुसे। वहाँ कुल-परम्परा चलानेके लिए, महाकालके मन्दिरमें अपने छोटे भाईको वे लोग छोड़ गये थे। उस नगरीमें राजा वृषभध्वज तथा रानी कमला राज्य करते थे। उनके दृढ़प्रहारी नामका एक अच्छा पहलवान था जिसके वप्रश्री नामकी पत्नी थी। उनके वज्रमुष्टि नामका पुत्र था। वह नगरसेठ विमलचन्द्र और सेठानी विमला की पुत्री मंगीको देखते ही कामज्वरसे पीड़ित हो गया। तब पहलवानने राजासे कहकर उन दोनोका विवाह करवा दिया ॥ ४४–४७ ॥

एक समय वसन्तके महीनेमे वज्रमुष्टि, राजाके साथ क्रीड़ा करने प्रमदवन गया था। उसकी माताने उसकी पत्नीको ( द्वेष बुद्धिसे घटमेंसे माला लानेके बहानेसे ) घटमे रखे हुए सर्पसे डँसवा लिया तथा नौकरोंके द्वारा उसे श्मशान भिजवा दिया। जब उसका पति वज्रमुष्टि लौटकर आया तो अपनी पत्नीको

दीक्षित्वा गणपतिना सार्द्धं सभ्रातृकः परिविहृत्य ।
आयासीदुज्जयिनीं तमपृच्छद्वज्रमुष्टिरिति ॥५९॥

सर्वेऽपि चारुरूपा नवयौवनदीप्ततेजसो यूयम् ।
यत्प्राव्राजिष्ट चेह तद्वैराग्यकारणं किन्तु ॥६०॥ त्रिकम ।

तेनोक्तमात्मचरितं श्रुत्वा निर्वेदकारणं तेषाम् ।
निश्चक्राम स्वयमपि दौष्ट्यं स्त्रीणां परिविनिन्दन् ॥६१॥

मंगी च तादृगार्याजिनदत्ताग्रे तु सर्वमथ पृष्ट्वा ।
श्रुत्वाऽस्मत्कारणत्वं निर्विद्यैषा प्रवव्राज ॥६२॥

कृत्वा तपांसि घोराण्यासन् सर्वेऽपि सम्यगाराध्य ।
त्रायस्त्रिंशत्काऽख्या सौधर्मे द्व्यर्णवायुष्का[1] ॥ ६३ ॥

अवतीर्य पूर्वभागे धातकीखण्डस्य भारते तस्मात् ।
नित्यालोके नगरे रजतगिरिदक्षिणश्रेण्याम् ॥ ६४ ॥

चित्रांगदः सुतोऽभून्मनोहरीचित्रचूलयोर्ज्येष्ठः ।
इतरे द्वन्द्वाः क्रमशोऽभवन् सुता भानुकीर्त्याद्याः ॥ ६५ ॥

गरुडध्वजवाहनकौ मणिहिमचूलौ च गगनानन्दचरौ ।
अनतिवररूपसत्त्वा विद्यावरपारगाश्चैते ॥ ६६ ॥

तत्रैव मेघपुर्यां सर्वश्रीवल्लभो नृपः श्रीमान् ।
नाम्ना धनञ्जयोऽभूद् दुहिता ख्याताऽस्य तु धनश्रीः ॥ ६७ ॥

स कदाचिदङ्गजाया कः स्याद् भर्त्तेति मन्त्रिणोऽप्राक्षीत् ।
मन्त्री स्म वदत्येकः सागरनासेत्यसवनीशम् ॥ ६८ ॥

कन्याप्रदानमेतद्द्वयमेव विलोकते नरपलोकः ।
कन्याशुभानुबन्धि कार्यं वा दातुरासन्नम् ॥ ६९ ॥

---

१. चार्णवायुष्का इति हरिवंशे, उत्तरपुराणे तु द्व्यर्णवायुष्काः ।

सुभानुने भी दीक्षा ले ली और गणपतिके साथ अपने भाइयों सहित विहार करते हुए वह उज्जयिनी नगरी आया। वहाँ वज्र-मुष्टिने उससे पूछा कि आप सब लोग तो सुन्दर रूपवाले, नव जवान, तेजस्वी हैं। आप लोगोंके वैराग्यका क्या कारण है जो सबने यह दीक्षा ले ली है। तब उसने आत्मचरित सुनाया। वज्रमुष्टिने अपने ही चरित्रको उन सबके वैराग्यका कारण जान, स्त्रियोंके खोटे स्वभावकी निन्दा करता हुआ स्वयं भी दीक्षित हो गया। मंगीने भी वैसे ही जिनदत्ता आर्यिकासे सब वृत्तान्त पूछकर और अपने ही चरित्रको वैराग्यका कारण जान विरक्त होकर दीक्षा ले ली ॥५७-६२॥ उन सब भाइयोंने घोर तपस्या की और आराधनाओं-का अच्छी तरह आराधनकर सौधर्म स्वर्गमें त्रायस्त्रिंशत् जातिके देव हुए जिनकी वहाँ दो सागरकी आयु थी ॥६३॥ फिर वे सब वहाँसे अवतरित हुए। और धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व भागमे भारतवर्षके विजयार्धपर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे नित्यालोक नगरके राजा चित्रचूल और रानी मनोहरीसे वह बड़े भाई सुभानुका जीव तो चित्रांगद नामका पुत्र हुआ तथा भानुकीर्ति आदि दूसरे भाई जुड़वाके रूपमे हुए उनका नाम गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणि-चूल, हिमचूल, गगनचर और आनन्दचर था। वे सब अतिरूप-वान् बलवान् एवं विद्यापारगामी थे ॥६४-६६॥

वहीं मेघपुरी नामकी नगरीमें धनञ्जय नामका राजा था। उसके सर्वश्री नामकी रानी तथा धनश्री नामकी पुत्री थी। किसी समय उसने मन्त्रियोंसे पूछा कि पुत्रीका पति किसे बनाना चाहिये। तब सागर नामके एक मन्त्रीने राजासे कहा कि हे राजन्! यह राजसमाज कन्याप्रदानमे दो ही हेतु देखता है एक तो यह कि यह कार्य कन्याके लिए शुभानुबन्धी हो तथा दाताका निकटवर्ती हो। दूसरा यह कि पुत्रीके सुखकी परवाह न कर

अनपेक्ष्य सुतासौख्यं स्वकार्यहेतोः प्रदीयते बलिने ।
परिचिन्त्य सौविहित्यं कन्यायास्त्वन्यदा राजन् ॥ ७० ॥

कार्यान्तराहितधियो न वयमिदानीमतोऽत्र दैवयुतम् ।
परिमृग्य ददामोऽस्मै सुसागरः प्राह तच्छ्रुत्वा ॥ ७१ ॥

नृप सुप्रतिष्ठनगरे रतिदेवीप्रियतमोऽस्ति हरिषेण. ।
हरिवाहनोऽस्य पुत्र. सर्वश्रीभ्रातृजो योग्यः ॥ ७२ ॥ पञ्चरम् ।

ऊचेऽथ कार्यसिद्धि' सकलनरेन्द्रस्य पतिरयोध्यायाम् ।
प्रीतिङ्करीप्रियतमो रथाङ्गभृत्पुष्पदन्ताऽख्य ॥ ७३ ॥

तस्याङ्गज' सुदत्त. सौभाग्येनाङ्गज. शरीरधर. ।
सर्वेषां प्रभविष्णू राजन्यानां स खलु बहुमान्य. ॥७४॥ युग्मम् ।

ईहानन्दो मन्त्री जगाद सञ्चिन्त्य तद्वच. श्रुत्वा ।
सर्वैरविरुद्धत्वात्स्वयंवरं वरमहं मन्ये ॥ ७५ ॥

प्रतिपद्य तस्य वाक्यं स्वयंवरायाजुहाव सर्वनृपान् ।
आगत्य सुदत्ताद्या क्लृप्तासनमध्यकेष्वासु. ॥ ७६ ॥

अवगाह्य राजवृन्दं कन्या हरिवाहनं तदा वव्रे ।
अतिगम्य सर्वनृपतीन् सुबुद्धिना दर्श्यमानांस्तान् ॥ ७७ ॥

प्रक्षुभिता. क्षितिपाला. स्वविवाहार्थं दुरात्मनाऽहूता. ।
वयमिति तदेतरेतरसङ्गन्कन्या मम ममेति ॥ ७८ ॥

ईक्षित्वा क्षत्रवधं विनिन्द्य विषयांश्च चित्रचूलसुता ।
प्राव्राजिपुस्तदानीं भूतानन्दाऽर्हत. पार्श्वे ॥ ७९ ॥

केवल अपने स्वार्थके लिए बलवान राजाको कन्या दी जाती है। इस समय हमे ऐसा कोई विशेष काम भी नहीं है इसलिए कन्याके कल्याणकी सोचकर किसी समय किसी भाग्यशालीको खोजकर ही हम उसे कन्या प्रदान करेंगे। सागर मंत्रीकी यह बात सुनकर सुसागर नामका मंत्री बोला कि हे राजन्! सुप्रतिष्ठ नगरमें राजा हरिषेण और रानी रतिदेवी रहते हैं। उनके हरिवाहन नामका पुत्र है वह रानी सर्वश्रीका भ्रातृज है और इसके योग्य है ॥६७–७२॥ तब कार्य-सिद्धि नामक मंत्रीने कहा कि अयोध्यामें पुष्पदन्त नामका चक्रवर्ती रहता है। उसकी प्रीतिङ्करी नामकी प्रिय रानी है। सौभाग्यसे उनके, मूर्तिमान् कामदेवके समान, सुदत्त नामका पुत्र है। वह सभी राजाओंमें प्रभावशाली एवं बहुमान्य है ॥७३–७४॥ तब उसकी बात सुनकर और खूब विचारकर ईहानन्द नामक मंत्रीने कहा कि मैं तो स्वयंवरको ही ठीक समझता हूँ इसमें किसीका विरोध नहीं है ॥७५॥

तब राजाने उसकी बातको मानकर स्वयंवरके लिए सभी राजाओंको बुलाया। सुदत्त आदि राजा लोग आकर सजे हुए आसनोपर बैठे ॥७६॥ तब उस समय कन्याने सुबुद्धि मंत्रीके द्वारा बतलाये गये सभी राजाओंको जान तथा उन सबको पार कर हरिवाहन राजकुमारको वरण कर लिया ॥७७॥ यह देख वे सब राजकुमार अत्यन्त क्षुब्ध हो गये और कहने लगे कि इस दुष्टने अपने विवाहकी शोभाके लिए ही हम लोगोंको बुलाया था और "यह कन्या मेरी है, मेरी है" कहते हुए आपसमे लड़ने लगे ॥७८॥

इस प्रकार क्षत्रियोंका वध देखकर इन्द्रियोंके विषयोंकी निन्दा करते हुए चित्रचूल विद्याधरके सभी पुत्र भूतानन्द तीर्थंकरके पास प्रव्रजित हो गये। तथा सातो ही भाई आराधनाओंका

सामानिका बभूवुः सप्ताऽप्याराध्य साधु माहेन्द्रे ।
सप्ताब्ध्युपमायुष्कास्ततोऽवतीर्णाः पुनरिहैवम् ॥ ८० ॥

ज्येष्ठो हास्तिननगरे शंखाऽख्यः श्वेतवाहनेभ्यस्य ।
अजनिष्ट बन्धुमत्यामितरेऽपि च गङ्गदेवस्य ॥ ८१ ॥

तन्नगरेशस्यासन्नन्दयशोदानन्दनाः सुता द्वन्द्वाः ।
गङ्गश्च गङ्गदत्तस्तथाऽपरो गङ्गरक्षितकः ॥ ८२ ॥

नन्दश्च सुनन्दोऽपि च सुनन्दिषेणश्च मातृपितृदयिताः ।
अन्योऽन्यस्पर्धिगुणाः सुन्दररूपाश्च सर्वेऽपि ॥८३॥ चतुष्कम् ।

सप्तमपुत्रमहासीद् देव्यसुना द्वेष्याहं क्षितीशेन ।
तमवृधत् गृहीत्वा धात्री नाम्ना च रेवतिका ॥ ८४ ॥

शङ्खोऽन्यदा गतस्तं करे गृहीत्वा मनोहरोद्याने ।
भुञ्जानान् राजन्यान्विलोक्य वाक्यं जगादैवम् ॥ ८५ ॥

निर्नामिको निषण्णैः सोदर्यसमाजभोजने यदिह ।
नाहूयते भवद्भिः किमयन्न भवेद् भवद्भ्राता ॥ ८६ ॥ युग्मम् ।

तद्वचनादाहूतः सह तैर्भोक्तुं प्रवलवानसकौ ।
सह नृपतिनैत्य देवी पादेनैवं तदाजघ्ने ॥ ८७ ॥

कष्टं खलु मद्धेतोः दुःखं यत्प्राप्तवान् वतायमिति ।
तमुपादाय प्रययौ शङ्खस्तैरन्वितः सर्वैः ॥ ८८ ॥

तत्र द्रुमषेणर्षि प्रवन्द्य पप्रच्छ पूर्वजन्मानि ।
निर्नामिकस्य मुनिरप्यवधिज्ञान्येवमाचष्टे ॥ ८९ ॥

सौराष्ट्रकगिरिनगरे चित्ररथः कनकमालिनीकान्तः ।
मांसप्रियो नृपोऽभूत्तस्य च सूदो दशग्रामेट् ॥ ९० ॥

सम्यक् आराधनकर माहेन्द्र स्वर्गमें सामानिक देव हुए जहाँ उनकी सात सागरकी आयु थी। वहाँसे अवतरित हो ज्येष्ठ भाई तो भारतवर्षके हस्तिनापुरमे श्वेतवाहन सेठ और बन्धुमती सेठानीसे शंख नामका पुत्र हुआ और शेष छह भाई उसी नगरके राजा गंगदेव और रानी नन्दयशोदाको प्रसन्न करनेवाले जुड़वे पुत्र हुए। उनका नाम क्रमसे गंग, गंगदत्त, गंगरक्षित, नन्द, सुनन्द और नन्दिषेण था। वे सब माता-पिताको प्यारे सुन्दर रूपवाले तथा गुणोमे एक दूसरेसे वढ़े-चढ़े थे ॥७९-८३॥ सातवें पुत्रकी रानीने पैदा होते ही इस विचारसे छोड़ दिया कि इसके गर्भमें आते ही राजा मेरे प्रति द्वेषभाव रखने लगा था। तब उसे रेवती नामकी धायने लेकर पाला-पोसा ॥८४॥

एक समय शंख ( सेठका पुत्र ) उस त्यक्त बालकका हाथ पकड़ मनोहर उद्यानमें ले गया और वहाँ भोजन करते हुए राजकुमारोको देखकर इस प्रकार बोला कि भाइयोके सामूहिक भोजनमें बैठे हुए आप लोग इस निर्नामकको क्यो नहीं बुलाते हो, क्या यह आप सबका भाई नहीं है ॥८५-८६॥ उसके ऐसे वचनोसे उन लोगोने उसे बुला लिया और वह भी उनके साथ भोजन करने लगा। उस समय राजाके साथ रानीने वहाँ आकर उस निर्नामकको लात मारी ॥८७॥ तब शंखके मनमें यह हुआ कि बड़े खेदकी बात है जो कि इसने मेरे कारण दुख पाया और उसे लेकर उन सब भाइयोके साथ वहाँसे चला गया। वहाँ द्रुमषेण मुनिकी वन्दना कर उनसे निर्नामकके पूर्व भवोको पूछा तब उन अवधिज्ञानी मुनिने भी इस प्रकार बतलाया ॥८८-८९॥

सौराष्ट्र देशके गिरिनगरका राजा चित्ररथ और उसकी रानी कनकमालिनी थी। वह राजा मांसका बड़ा प्रेमी था अमृतरसायन नामका उसका रसोइया दश गाँवका स्वामी था।

अमृतरसायनसंज्ञो नृपे कदाचित्सुधर्ममुनिपार्श्वे ।
मांसोत्पत्तिं श्रुत्वा राज्ये संस्थाप्य मेघरथम् ॥ ९१ ॥

निष्क्रान्ते त्रिशतैः सह हृतवृत्तिः नवनृपेण चुक्रोध ।
पिकग्रामकशेषं तु जैनीभूतेन तनयोऽसौ ॥ ९२ ॥

नाग्राहयिष्यदेनं श्रावकतां क्षपणको यदि च नायम् ।
वृत्तिमलोप्स्यद्राजा ममेति तस्मै कदाचिददात् ॥ ९३ ॥

कटुकालाबुमिश्रं कदन्नमनुना स ऊर्जयन्तगिरौ ।
मृत्वाऽपराजितेऽभूद् देवो द्वात्रिंशदब्ध्यायुः ॥ ९४ ॥ पञ्चकम् ।

सूदोऽपि पापदोषाद्दुर्दग्धां वालुकाप्रभां गत्वा ।
त्रिसमुद्रसमं कालं दुःखान्यघसन्नरकमित्वा ॥ ९५ ॥

भ्रान्त्वा संसारवने पापोपशमात्पुनर्मलयराष्ट्रे ।
ग्रामे च पलाशाख्ये कुटुम्बिनो यक्षदत्तस्य ॥ ९६ ॥

अजनिष्ट यक्षिलायां यक्षावरज स यक्षिलो नाम्ना ।
शकटेन यन्[1] कदाचिद् भ्रात्रा विनिवार्यमाणोऽपि ॥ ९७ ॥

उपरिष्टादन्धाहेरवाहयच्छकटमेष निष्करुणः ।
सोऽपि परिरुग्णभोगो मृत्वा वै सतीव्रदुःखेन ॥ ९८ ॥

श्वेतांविकानगर्यां वासवनाम्नो वसुन्धरागर्भे ।
दुहिताऽसीन्नन्दयशा देवी चाकामनिर्जरया ॥ ९९ ॥

सोऽयं यक्षिलकोऽभून्निर्नामा कटुकतुम्बिकादानात् ।
मात्राऽपि च विद्वेष्यो निष्कारुण्याच्च पूर्वभवे ॥ १०० ॥

तच्छ्रुत्वा त्रिशतैः सह राजासौ देवनन्दमभिषिच्य ।
सश्रेष्ठिशङ्खतनयो निरक्रमीज्जातनिर्वेदः ॥ १०१ ॥

---

१. यन् = गच्छन्नित्यर्थः ।

एक समय सुधर्म मुनिसे मांसकी उत्पत्ति सुनकर वह राजा विरक्त हो गया और अपने पुत्र मेघरथको राज्य देकर तीन सौ राजाओंके साथ दीक्षित हो गया। तब नवीन राजाने जो कि जैनी हो गया था उस दुष्ट रसोइयेकी आजीविका छीन ली और केवल पिकग्राम उसके पास रहने दिया। तब वह रसोइया बहुत क्रुद्ध हुआ ( और विचारने लगा कि ) 'यदि इस मुनिने राजाको श्रावकके व्रत न दिये होते तो यह मेरी आजीविकाको कभी न छीनता' ॥९०-९३॥ ऐसा सोच उसने एक समय उन मुनिराजको कड़वी लौकीके साथ कदन्न खिला दिया। इससे गिरनार पर्वतपर मरकर वे मुनिराज अपराजित अहमिन्द्र विमानमें ३२ सागरकी आयुवाले देव हुए ॥९४॥

वह रसोइया भी पापके कारण भयंकर वालुकाप्रभा नामके नरकमें जाकर तीन सागर तक दुख भोगता रहा। फिर नरकसे निकलकर संसाररूपी वनमें घूमता फिरा। तथा पापोंके उपशम होनेसे वह मलय देशके पलास नामक गॉव मे, यक्षदत्त गृहस्थकी पत्नी यक्षिलासे, यक्षका छोटा भाई, यक्षिल नामका पुत्र हुआ। एक समय वह गाड़ीसे घूम रहा था। अपने भाईके द्वारा मना करनेपर भी उसने निर्दयता-पूर्वक अंधसर्पके ऊपरसे गाड़ी चला दी जिससे उसका शरीर कुचल गया और वह बड़े तीव्र दुःखसे मरकर अकामनिर्जराके कारण श्वेताम्बिका नगरीमें वासवराजा और वसुन्धरा रानीसे नन्दयशा नामकी पुत्री हुआ। वह यक्षिल भी कड़वी लौकी खिलानेके कारण यह निर्नामक हुआ है और पूर्वजन्मकी निर्दयताके कारण ही इसकी मां इससे द्वेष करती है ॥९५-१००॥

यह सुन वह राजा विरक्त हो गया और अपने पुत्र देवनन्द को राज्य दे, दो सौ राजाओंके साथ तथा सेठके पुत्र शंखके

देवी च सधात्रीका वन्धुमती सुव्रतार्यिकापार्श्वे ।
प्राव्राजिष्टां नितरां तदेवं निर्वेदमासाद्य ॥ १०२ ॥
निर्नामको निदानं मृगराड्विक्रीडितं तपः कुर्वन् ।
अकरोन्मनुष्यभवे भूयासं लोककान्त[१] इति ॥ १०३ ॥
जन्मान्तरेऽपि तनया भूयासुरिमे देव्यवृणोत् धात्री ।
वर्धयिष्यन्त एते भवान्तरे च निदानमकरोत् ॥ १०४ ॥
इति तपसित्वा[२]भूवंस्ते षोडशसागरायुषो देवाः ।
कल्पे च महाशुकेऽवतीर्थ तस्मादसौ शङ्खः ॥ १०५ ॥
राजा हिरण्यनाभी रिष्ट[३]पुरे समभवत् सुभद्रायाः ।
तद्दुहितरि रोहिण्यां स्वत्पुत्रोऽभूद् बली पद्मः ॥ १०६ ॥
जाता दशार्णनगरे धन्याऽमरसेनयोस्तु नन्दयशाः ।
इह देवकी तवेष्टा दुहिता खलु मृत्तिका[४]वत्याम् ॥१०७॥
मलयेषु भद्रिलपुरे प्रिया सुदृष्टेरिहाऽभवद्धात्री ।
श्रेष्ठिन्यलका नाम्ना दिवोऽवतीर्णा महाशुक्रात् ॥ १०८ ॥
ये गङ्गदेवतनया गङ्गाद्याः षडपि देवकीगर्भे ।
उत्पत्स्यन्ते नृपते द्वन्द्वा भूत्वा क्रमेणैवम् ॥ १०९ ॥
शक्राज्ञया सुतास्ते प्रसूतमात्रास्तु भद्रिलपुराय ।
हरिणैगमेशि[५]नाम्ना हरिष्यन्ते चाधिदेवेन॥ ११० ॥
तत्र च धात्रीचर्या वर्धिष्यन्ते शुभेन सर्वेऽपि ।
नृपदेवदत्तपालावनीकदत्तश्च तत्पालः ॥१११॥
शत्रुघ्नो जितशत्रुश्चैते ते हरिकुलध्वलस्येशः ।
प्रव्रज्य जिनस्यान्ते संगस्यन्ते शिवसुखेन ॥११२॥
अवतीर्य नाकलोकान्निर्नामासौ तपःफलोत्कर्षात् ।
उत्पत्स्यते प्रियायां भविताऽत्रैकोऽम्यमित्रीयः ॥११३॥

---

१. जनकान्तिके इति हरिवंशपुराणे । २. तपश्चरित्वा इत्यर्थः । ३.अरिष्टपुरे । ४.मृगावती, उत्तरपुराणे । ५.'नैगमार्ष' इति उत्तरपुराणे ।

साथ दीक्षित हो गया। उसी तरह रानीने भी धाय और बन्धुमती सेठानीके साथ विरक्त होकर सुव्रता आर्यिकाके पास दीक्षा ले ली ॥१०१-१०२॥ निर्नामकने भी सिंहनिष्क्रीडित तप करके यह निदान किया कि मैं फिरसे मनुष्य भव धारण कर लोगोंका राजा बनूं ॥१०३॥ रानीने भी निदान किया कि जन्मान्तर में ये सब मेरे पुत्र हों तथा धात्रीने भी चाहा कि दूसरे जन्ममें मैं इनको पालने वाली बनूँ। इस प्रकार तपस्या कर वे सब महाशुक्र नामके स्वर्गमें सोलह सागर आयु वाले देव हुए। फिर वहाँ से अवतरित हो शंखका जीव रिष्टपुरके राजा हिरण्यनाभि और रानी सुभद्राकी पुत्री रोहिणीसे तुम्हारा पुत्र बलदेव हुआ है। नन्दयशाका जीव मृत्तिकावती देशमें दशार्ण नगरके राजा अमरसेन (देवसेन) और रानी धन्यासे देवकी नामकी तुम्हारी प्रियतमाके रूपमें हुआ है। तथा धात्रीका जीव भी, महाशुक्र स्वर्गसे अवतीर्ण हो मलय देशके भद्रिलपुर नगरमें सेठ सुदृष्टिकी प्रिय सेठानी 'अलका'के रूपमें हुआ है ॥१०४-१०८॥ और गगदेवके जो गंग आदि छह पुत्र थे वे सभी हे वसुदेव! क्रमसे तुम्हारे जुड़वे पुत्र होंगे। उन्हें जन्मते ही इन्द्रकी आज्ञासे हरिणैगमेशी नामका देवता भद्रिलनगर ले जायगा ॥१०९-११०॥ वह धात्रीका जीव (अलका सेठानी) इन सबका अच्छी तरह पालन-पोषण करेगा। इनके नाम क्रमशः नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु होंगे। ऐश्वर्यशाली ये सब हरिवंशको उन्नत बनावेंगे। और जिनेन्द्र भगवान्‌के पास दीक्षा लेकर मोक्ष सुख प्राप्त करेंगे ॥१११-११२॥ निर्नामकका जीव भी स्वर्गसे अवतरित हो अपने उच्च तपके बलसे तुम्हारी प्रिय रानी देवकीसे अकेले ही उत्पन्न होगा। और वह शत्रुपर चढ़ाई करेगा ॥११३॥

इत्थं यतिनाऽऽख्यातं निशम्य पुनरानकः प्रवन्द्येशम् ।
पप्रच्छ मुदितचेताः स्ववंशभाविनं जिनेन्द्रमिति ॥११४॥

हरिवंशवर्द्धनोऽर्हन् कथं भवेत् किं प्रकृत्य पूर्वभवे ।
इति चोदितो बभाषे भगवज्जन्मानि मुनिरित्थम् ॥११५॥

जम्बूद्वीपसुपद्मासीतोदाऽपाच्य[१]सिंहपुरनृपतेः ।
अर्हद्दासस्यासीज्जाया त्वेका च जिनदत्ता ॥११६॥

तस्यामजनि च स्वप्नान् वीक्ष्य विवस्वद्धरीन्द्रकरिलक्ष्मीः ।
अपराजित इति तनयो जिनपूजासादितोत्पादः ॥११७॥

अन्येद्युः परमहितं मनोहरोद्यानसन्निषण्णमसौ ।
राजा जिनमभिनन्तुं ययौ विमलवाहनं ससुतः ॥११८॥

तत्पार्श्वेऽसौ नृपतिः प्राव्राजीत् पञ्चराजशतसहितः ।
सम्यक्त्वराज्यलाभौ लब्ध्वाऽप्यपराजितो रेमे ॥११९॥

श्रुत्वा निर्वृतिगमनं जिनपित्रोर्गन्धमादनाद्रौ स ।
अकरोदष्टमभक्तां दत्तां धनदेन च जिनार्चाम् ॥१२०॥

चैत्ये सिंहनिविष्टेऽतिष्ठिपज्जातु मिथोऽत्र देवीभ्यः ।
प्रीतिमतीप्रभृतिभ्यः पर्वणि धर्मं ब्रुवन्नास्ते ॥१२१॥

तत्समये द्वौ तस्मिन्नवतेरतुश्चारणौ सतौ नत्वा ।
उपविश्याऽऽख्यद् दृष्टौ क्व नु भगवन्तौ मयेति नृपः ॥१२२॥

आमित्येकोऽभ्यददात्पुष्करपश्चार्द्धमन्दराऽपरतः ।
विजयार्द्धोदक्श्रेण्यां सूर्याभो नामतो नगरम् ॥१२३॥

---

१. उदक् इति उत्तरपुराणे ।

इस प्रकार मुनिराजसे यह सब सुन वसुदेव प्रसन्न हुआ और उन्हे फिरसे नमस्कार कर अपने वंशमे होनेवाले तीर्थंकरके विषयमे इस प्रकार पूछने लगा ॥११४॥ कि हरिवंशको गौरव देनेवाले वे अर्हन्त पूर्व भवोमें किस प्रकार क्या पुण्य कर्म कर उत्पन्न हो रहे हैं। तब मुनिराज वसुदेवके आग्रहसे भगवान् नेमिनाथके पूर्वभवोको इस प्रकार कहने लगे ॥११५॥

इसी जम्बूद्वीपमे सीतोदा नदीके पश्चिम तटपर सुपद्मा देशके सिहपुर नगरमे राजा अर्हद्दास तथा रानी जिनदत्ता रहते थे। उनके जिन-पूजाके माहात्म्यसे, रानीको सूर्य, सिंह, हाथी और लक्ष्मीको स्वप्नमें देखनेके बाद अपराजित नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ११६-११७॥ एक दिन वह राजा मनोहर नामके बगीचेमे बैठे हुए, परमहितकारी विमलवाहन तीर्थंकरकी वन्दना करने अपने पुत्रके साथ गया। और धर्मोपदेश सुनकर उनके समीप पॉच सौ राजाओके साथ दीक्षित हो गया। अपराजित भी जिन भगवान्से सम्यक्त्व और (पितासे) राज्य प्राप्त कर सुखपूर्वक रहने लगा ॥११८-११९॥

फिर गन्धमादन पर्वतपर तीर्थंकर व अपने पिताका निर्वाण गमन सुन (वहॉ गया) और वहॉ आठ दिनका उपवास किया तथा कुवेरके द्वारा प्रस्तुत जिन-पूजा भी की ॥१२०॥ किसी समय वहॉ वह राजा पर्वके दिनमें अपनी प्रीतिमती आदि रानियो-के साथ सिहनिविष्ट नामके चैत्यालयमे बैठकर धर्मचर्चा कर रहा था कि उसी समय दो चारण मुनि वहॉ आकाशसे उतरे। तब राजा उन दोनोको नमस्कार कर उनके पास बैठ कर कहने लगा कि आप दोनोंको मैने कहीं देखा है ॥१२१-१२२॥ तब उनमेसे एकने कहा 'हॉ' और बताने लगे कि पुष्करार्ध द्वीपके पश्चिम मन्दराचलके पश्चिम विदेह क्षेत्रमे जो विजयार्ध पर्वत है उसको

राजाऽस्मिन् सूर्याभो यथार्थनामाऽस्य धारिणी देवी ।
तत्पुत्राश्चिन्तागतिमनोगती च चपलगतिरिति ॥१२४॥

तत्राऽरिन्द[१]मनगरे राज्ञाजितसेनजानिनाऽऽहूताः ।
स्वसुतास्वयंवरार्थं मन्त्रभृतोऽरिञ्जयाख्येन ॥१२५॥

कन्याऽसौ प्रीतिमती गतियुद्धप्रसाधिनी किलात्मगुरोः ।
पतितोत्थिता चरणयो. संसाराऽसारतां बुद्ध्वा ॥१२६॥

प्रोवाच दिदीक्षिषया ननु वरम्सह्यं देहीति राज्ञा ।
तस्या ज्ञात्वाऽऽकूतं प्रोचे वृणीष्व तपसोऽन्यदिति ॥१२७॥

शारीरावनिकायां च शश्वद्रुधिरं निषद्य निपिबन्त्या ।
विसृजे यदि निर्यातुं न रौद्रगृहतन्त्रराक्षस्याः ॥१२८॥

तस्मा अहं प्रदेया गतियुद्धपराजिताऽस्मि येनेति ।
अस्तु तथेति नृपोऽसौ तत्खचरान् बोधयामास ॥१२९॥चतुष्कम्।

तच्छ्रुत्वा महतीयं विद्या त्विति खेचरा. खलु विपेदु ।
विद्यावेगविदस्रा· प्रोत्तस्थुर्धारिणीतनयाः ॥१३०॥

अथ तेभ्य· पूर्वतरं मेरुं पर्याप्य सा जिनप्रतिमाः ।
आपूज्य विजितखचरा निवृत्तिपार्श्वे प्रवव्राज ॥१३१॥

भग्नाः स्त्रिया वयमिति प्राव्राजिषुरन्तरात्मनिर्विण्णाः ।
दमवरमुनेस्त्रयस्ते सूर्याभसुतास्तपः कृत्वा ॥१३२॥

माहेन्द्रकल्पमीयु. सप्तोदधिसंयुताऽऽयुषस्तत्र ।
सामानिकत्वमाप्त्वा च्युत्वाऽस्मान्मध्यमावरजौ ॥१३३॥

---

१. अरिञ्जय इति हरिवंशपुराणे ।

उत्तर श्रेणीमे एक सूर्याभनगर है। वहाँ यथार्थनामवाला सूर्याभ राजा तथा रानी धारिणी रहते थे। उनके चिन्तागति, मनोगति और चपलगति नामके तीन पुत्र थे ॥१२३-१२४॥

उस पर्वतपर अरिन्दम नगरमें अरिञ्जय नामके राजा और अ जतसेना उसकी रानी थी। राजाने अपनी पुत्रीके स्वयंवरके विषयमें विचार करनेके लिए मन्त्रियोको बुलाया। पर वह प्रीति-मती नामकी कन्या गतियुद्ध विद्यामे निपुण थी। उसने संसारकी असारताको जानकर, दीक्षाकी भावनासे अपने पिताके चरणोमें गिरकर कहा कि मुझे एक वरदान दीजिए। तब उसके अभिप्रायको जानकर राजाने कहा कि तपस्याकी बात छोड़कर तुम कोई दूसरा वर माँगो। तब उस कन्याने कहा कि यदि आप इस भयानक गृहावस्थारूपी राक्षसी, जो कि शरीररूपी भूमिमे बैठकर निरन्तर खून पी रही है, से दूर होनेके लिए छुटकारा नहीं देते तो मुझे उस ही व्यक्तिको विवाहे जो मुझे गतियुद्धमें हरा दे। राजाने उसे 'तथास्तु' कह इस बातकी सूचना विद्याधरोके पास भेजी ॥१२५-१२९॥

यह सुनकर तथा इस विद्याको महान् जानकर सभी विद्याधर दुखी हुए पर रानी धारिणीके पुत्र चिन्तागति आदि अपने विद्याबलके घमण्डसे वहाँ आये ॥१३०॥ तदनन्तर उस गतियुद्धमे उस कन्याने उन लोगोंसे पहले ही मेरुकी प्रदक्षिणा कर तथा जिन-प्रतिमाओंकी पूजाकर उन विद्याधरोंको जीत लिया और निवृत्ति नामकी आर्यिकाके समीप दीक्षा ले ली ॥१३१॥ वे विद्याधर भी यह मान कि 'हम लोग स्त्रीसे पराजित हो गये हैं, भीतर ही भीतर ग्लानि अनुभव करने लगे। तथा सूर्याभ राजाके उन तीनों पुत्रोंने दमवर मुनिके समीप दीक्षा ले ली और तपस्या कर माहेन्द्र स्वर्गमे सात सागरकी आयु वाले सामानिक देव हुए। वहाँ से च्युत होकर

जातौ पूर्वविदेहे ह्युदक्खचराद्रेः पुष्कलावत्याम् ।
इह गगनवल्लभपुरे गगनेन्दोर्गगनसुन्दर्याम् ॥१२४॥

नाम्नाऽमितगत्याख्योऽमिततेजाश्चेति पुण्डरीकिण्याम् ।
प्रव्रजितौ संश्रुत्य स्वयम्प्रभादर्हतो धर्मम् ॥१२५॥

तावावामिह राजन् महेन्द्रकल्पच्युतं तु नौ ज्येष्ठम् ।
त्वामायातौ प्रष्टुं पृष्ट्वा नो जन्म सर्वज्ञात् ॥१२६॥ पञ्चकम् ।

भवितासि भरतवर्षे हरिवंशाकाशचारुशशलक्ष्मा ।
त्वमरिष्टनेमि-अर्हन् पञ्चमके जन्मनि किलाऽत्र ॥१२७॥

मासावशेषमायुस्तवाऽत्मपथ्यं चरेति सन्दिश्य ।
आपृच्छ्य च राजानं चेलतुरस्मादृषी सहसा ॥१२८॥

चारणवचनं श्रुत्वा मुदितो नृपतिश्चिरं समादध्यौ ।
आगमिष्यतां यदि मे मृतं वृथा च स्यादायुरिति ॥१२९॥

अल्पीयान् खलु कालस्तपसे नास्तीति जिनमहमकार्षीत् ।
अर्हन् महिमाधीना जगति च सत्सम्पदः सर्वाः ॥१४०॥

अष्टाहमहसमाप्तौ राज्ये प्रीतिङ्करं प्रतिष्ठाप्य ।
स प्राणानत्याक्षीद्विधिवत्प्रायोपगमनेन ॥१४१॥

अनुपरमचारुसौख्यां द्वाविंशतिसागरोपमाऽयुष्काम् ।
पुनरच्युतेन्द्रलक्ष्मीमलभत् भूयस्ततश्च्युत्वा ॥१४२॥

इह कुरुषु भरतवास्ये राजानौ गजपुरे महात्मानौ ।
श्रीचन्द्रश्रीमत्यौ सुतस्तयोः सुप्रतिष्ठोऽभूत् ॥१४३॥

अभिषिच्य ततस्तनयं श्रीचन्द्रोऽसौ सुमन्दिरसकाशे ।
प्रव्रज्य पतितकर्मा निर्वाणमगाज्जगत्पूज्यम् ॥१४४॥

मझला और छोटा भाई, पूर्व विदेहके पुष्कलावती देशमे विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीके गगनवल्लभपुरमें राजा गगनेन्दु और रानी गगनसुन्दरीसे अमितगति और अमिततेज नामके पुत्र हुए। फिर पुण्डरीकिणी नगरीमे स्वयंप्रभ भगवान्से धर्मोपदेश सुन मुनि हो गये ॥१३२-१३५॥ हे राजन्, महेन्द्रकल्पसे अवतरित होकर वे दोनो हम ही हुए हैं और सर्वज्ञसे अपने जन्मकी बात जानकर अपने ज्येष्ठ भाई तुम्हे देखने यहाँ आये हैं ॥१३६॥ तुम अबसे पाँचवे जन्ममे इसी भारतवर्षमें हरिवंश रूपी आकाशमे मनोहर चन्द्रमाकी भाँति भगवान् अरिष्टनेमि होओगे ॥१३७॥ तुम्हारी आयु केवल एक माह शेष रह गई है इसलिए आत्मकल्याण करो। इस प्रकार राजाको उपदेश दे तथा विदा ले वे दोनो मुनि वहाँसे तुरन्त चले गये ॥१३८॥

चारण ऋषिके वचनोको सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बहुत समय तक विचार कर कि 'यदि मेरा मरण हो गया तो मेरी थोड़ी आयु व्यर्थ जायगी और मेरे पास भी अब तपस्या करनेको बहुत थोड़ा समय है' और यह सोचकर कि 'ससारमे सभी अच्छी विभूतियाँ जिनभगवान्की पूजासे ही मिल सकती है'— वह जिन-पूजामे रत हो गया। तत्पश्चात् अष्टाह्निका पूजा समाप्त होने पर उसने अपने पुत्र प्रीतिङ्करको राज्य देकर तथा विधिपूर्वक समाधिमरणसे प्राणोको छोड़ा ॥१३९-१४१॥ और सतत मनोहर सुखसे पूर्ण अच्युत स्वर्गकी विभूतिको बाईस सागर तक भोग कर वहाँसे फिर च्युत हुआ ॥१४२॥ तथा इसी भारतवर्षमे कुरुदेशके हस्तिनापुर नगरमे राजा श्रीचन्द्र और रानी श्रीमतीसे सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ ॥१४३॥

राजा श्रीचन्द्रने अपने पुत्रका राज्याभिषेक कर सुमन्दिर तीर्थंकरके पास दीक्षा ले ली और कर्मोंको नष्ट कर जगत्पूज्य

समवाप सुप्रतिष्ठः प्रदाय दानं यशोधराय पुनः ।
मासोपवासतपसे वसुधाराद्यां च सुरपूजाम् ॥१४५॥

हर्म्येऽन्यदा रजन्यां कार्त्तिक्यां संस्थितः प्रियाभिरमा ।
वीक्ष्य सुनन्दाद्याभिर्निर्विविदे पतनमुल्कायाः ॥१४६॥

प्रातः सुदृष्टनाम्ने राज्यमदीक्षिष्ट सूनवे दत्त्वा ।
पितृगुरुमुपेत्य धीमान् मत्वा श्रियमुल्कया तुल्याम् ॥१४७॥

एकादशाङ्गमखिलं सुशीघ्रमध्यैत प्रश्रुतं श्रीमान् ।
तेपे तपांसि चोग्रं मृगराड्विक्रीडितादीनि ॥१४८॥

सम्भावितैरजस्रं षोडशभि कारणैस्त्रिजगदीड्य. ।
तीर्थङ्करनाम पुण्यं चिकाय चेतोऽङ्गवाक्छुद्धः ॥१४९॥

प्रत्याख्याय च भक्तं मासिकमाराध्य सम्यगुत्सेदे ।
स्वर्लोकमौलिकल्पे विमानमुख्ये जयन्ताख्ये ॥१५०॥

द्वाविंशदर्णवोपमनिरन्तराऽत्यन्तरम्यसौख्यायु ।
सम्भाव्य तत्र भगवानहमिन्द्रत्वं चिरमरंस्त ॥१५१॥

अवरुह्य पुनस्तस्माद् भगवान् भविता समुद्रविजयस्य ।
शिवदेवीप्रियसूनुस्त्रिदशेन्द्रसमर्च्य सच्चरण ॥१५२॥

एवं निशम्य सूक्तं वन्दित्वा यतिमुपेत्य सिद्धान्तम् ।
आख्याय तत्प्रियायै समरंस्त तयाऽऽनक[1]दुन्दुभि. ॥१५३॥

इत्यरिष्टनेमिनाथचरिते पुराणसंग्रहे भगवद्भवाभिधानो नाम
द्वितीय सर्गः समाप्त. ॥

---

१. वसुदेवः ।

निर्वाण पद प्राप्त किया ।।१४४।। इधर राजा सुप्रतिष्ठने एक माहका उपवास किये हुए यशोधर मुनिराजको आहार दान दिया जिससे उसके घर देवोंने धनवृष्टि आदि पंचाश्चर्य किये ।।१४५।। एक समय कार्तिककी रात्रिसे वह अपनी सुनन्दा आदि रानियोंके साथ महलके ऊपर बैठा था कि उसे उल्कापात देख विराग हो गया। तथा वह बुद्धिमान् समस्त विभूतिको उल्काके समान क्षणभंगुर जान प्रातःकाल अपने पुत्र सुदृष्टको राज्य देकर अपने पिताके गुरु सुमन्दर जिनके पास दीक्षा ले ली ।।१४६-१४७।। तथा उसने शीघ्र ही समस्त ग्यारह अंग वाले श्रुत (शास्त्र) का अध्ययन कर लिया और सिंहनिष्क्रीडित नामका उच्च तप करने लगा। तीनो लोकोसे पूजित हो उसने भावनाओका निरन्तर अभ्यास किया और मन वचन कायसे शुद्ध हो तीर्थंकर नामकी पुण्य प्रकृतिका बंध किया ।।१४८-१४९।। उन भगवान्‌ने एक माहमें लेने वाले भोजनको भी छोड़ आराधनोका अच्छी तरह आराधन किया और स्वर्ग लोकके मुकुटके समान तथा विमानोंमें मुख्य जयन्त विमानमें जन्म लिया तथा वहाँ ३२ सागर तक सतत अत्यन्त रमणीय सुख और आयुको पाकर अहमिन्द्र पदका चिरकाल तक भोग किया ।।१५०-१५१।।

तदनन्तर स्वर्गसे अवतरित हो वे भगवान् राजा समुद्रविजय और रानी शिव देवीके प्रिय पुत्र हो देवेन्द्रोंसे पूजा प्राप्त करेंगे। इस प्रकार वसुदेव उन सब वृत्तान्तोको तथा तत्त्वोपदेशको सुन मुनिराजको नमस्कार कर अपने महल लौट गया और अपनी प्रिया देवकीको सब सुना कर उसके साथ आनन्दसे रहने लगा ।।१५२-१५३।।

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके अरिष्टनेमिचरितमें भगवान्‌के भवोंको कथन करनेवाला द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

# तृतीयः सर्गः

अथ देवकीप्रसूतौ न्यसून्यपत्यानि देवसंक्रमणात् ।
समताडयच्छिलायां विलोक्य कंस. सशङ्कोऽपि ॥ १ ॥

उदपादि ततो विष्णुर्द्वादश्यां सप्तमासिके गर्भे ।
भाद्रपदशुक्लपक्षे श्रवणोर्ध्वसमागते शशिनि ॥ २ ॥

सप्ताहमहावर्षे प्रवर्त्तमाने प्रसूतमात्रममुम् ।
पित्रा विधृतातपत्रं वसनेनादाय निशि सीरी ॥ ३ ॥

कंसभयान्निर्गच्छन्नगरद्वारे पय.कणापातात् ।
हरये च तदा क्षुतवति जीवारिनिषूदन चिरन्त्वम् ॥ ४ ॥

श्रुत्वोग्रसेनदत्तामाशिषमनुपच्चकार संस्थं[१] च ।
कस्मैचिन्मा स्म गदी. मोक्ता भवतोऽयमिति तेन ॥ ५ ॥

पुरत प्रास्थितवृषभो ज्वलद्विषाण. प्रदीपयन्मार्गम् ।
यमुनाऽभवत्प्रपूर्णाच्छिन्नस्रोता हरे. पुण्यात् ॥ ६ ।

सन्दाय नन्दगोप्यै वृन्दावनमेत्य गोव्रजं सीरी ।
तस्याश्चानीय सुतां देवक्यै तामुभौ ददतु' ॥ ७ ॥

कंस. सुताप्रसूतिं निवेदितो नासिकां तुतोदास्या' ।
भर्त्ता वास्या' स्यान्मे भयावहश्चेति सञ्चिन्त्य ॥ ८ ॥

---

१. प्रतिज्ञा कारितवान् ।

## तृतीय सर्ग

तदनन्तर देवकीके प्रसव होनेपर देवता परिवर्तन कर निर्जीव पुत्रोको वहॉ रख देता था पर मनमें भयभीत कंस उन (मरे हुओ) को जानकर शिलापर पटक देता था। इस तरह ( छह पुत्रोंके बाद) सातवे महीनेमे ही भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको, जब कि श्रवण नक्षत्रमे चन्द्रमा था तब, कृष्णने जन्म लिया ।।१–२।। उस समय सात दिन तक लगातार महावर्षा होनेपर भी तुरन्त पैदा हुए उस बालकको कंसके भयसे बलराम रात्रिमे ही कपड़ेमें ढँक कर ले चले और वसुदेवने छाता लगा लिया। वे लोग ज्योंही नगरके दरवाजेसे निकल रहे थे, त्यों ही बालककी नाकमे पानीकी बूँदें गिरनेसे छींक आ गई इसपर कृष्णके लिए उग्रसेनने ( जो कि दरवाजेपर बन्दी था ) आशीर्वाद दिया कि हे शत्रुविनाशक, तुम चिरंजीव होओ। यह सुनकर बलरामने उग्रसेनसे प्रतिज्ञा करायी कि आप यह बात किसीसे न कहें क्योंकि वह बालक आपको भी छुड़ाने वाला होगा ।।३–५।।

उनके आगे आगे कृष्णके पुण्य प्रतापसे मार्गको प्रकाशित करता हुआ एक बैल जा रहा था जिसके कि सींग ही प्रज्वलित हो रहे थे। तथा बड़े प्रवाहसे युक्त यमुना नदी भी थोड़े प्रवाह वाली हो गई ।।६।। गोकुल वृन्दावनमे जाकर बलरामने नन्दगोपकी पत्नीको वह बालक दे दिया और उसकी कन्या लाकर देवकीके लिए दे दी ।।७।। फिर कंसको कन्या उत्पन्न होनेकी सूचना दी गई तो उसने यह सोचा कि शायद इसका पति ही मेरा शत्रु हो, और उसकी नाक चिपटी कर दी ।।८।।

निमित्तविदा कदाचित् ह्युक्तोऽरिस्तवैधते नृप क्वापि ।
अष्टमभक्तमकार्षीत्तपो हि शत्रुप्रहाणिकरम् ॥९॥

एतेन तदोपगताः समन्वशाद्देवताश्च पूर्वभवाः ।
क्षपयत मंक्षु मदीयं द्विषमिति जग्मुस्तथेत्येता. ॥१०॥

भूत्वा महाशकुन्त. कृष्णमपस्कत्तुमुद्यताऽत्रैका ।
तेनास्फारिततुण्डा नर्दन्त्यन्तर्दधे सद्य. ॥११॥

अपरां पुनर्पिशाचीं विषस्तनीमागतां प्रपाययितुम् ।
निजघान च शिशुरेनां स्तनचूचुकमादशन्नेव ॥१२॥

शकटीभूय पतन्तीमपरां पादेन सोऽभिनद्विभय. ।
समपातयच्च वृक्षौ उदूखलोन्नद्धचरणेन ॥१३॥

दर्पाद्विघूर्णयन्तं घोषमशेषं गवां पतिमरिष्टम् ।
व्यावर्त्य विभी' कण्ठं व्यपोथयद्बाहुयन्त्रेण ॥१४॥

वित्रस्तहंसमृगं पतत्तटीप्रस्तरं प्रचलवृक्षम् ।
उत्साहिताय दोर्भ्यां गोवर्धनपर्वतं दध्रे ॥१५॥

एवं कृतानि हरिणा श्रुत्वा कर्माण्यमानुपाणि बलात् ।
तुष्ट्या दिदृक्षमाणा सूनुं सीरायुधेन सह ॥१६॥

उपवासव्यपदेशात्कदाचिदागत्य देवकी घोपम् ।
पयसास्नाप्यत हलिना हरिदर्शनसंस्नुतस्तनी ॥१७॥ युग्मम् ।

किसी समय एक निमित्तज्ञानीने कंससे कहा कि हे राजन् ! तुम्हारा शत्रु कही वृद्धिगत हो रहा है। तब कंसने यह सोच कि तप ही शत्रुका नाश करने वाला है, इसलिए आठ दिनका उपवास किया। इससे पूर्व जन्मके सब देवता उसके पास आ गये। कंसने उन्हे आदेश दिया कि आप लोग मेरे शत्रुको शीघ्र नष्ट कीजिए। तब वे लोग 'अच्छा' कहकर चले गये ॥९-१०॥

उनमेंसे एक देवी बड़े पक्षीका रूप धारणकर कृष्णको चोच मारने आई तो कृष्णने उसकी चोचपर ऐसी चोट पहुँचाई कि वह चिल्लाती हुई वहाँसे शीघ्र ही लुप्त हो गई। दूसरी देवी पिशाचीका रूप धारण कर विषैले स्तन पिलाने आयी तब उस बालकने स्तनोके चूचुकोको काटकर उसे मार डाला। तीसरी देवी गाड़ीका रूप धारण कर कृष्णके ऊपर गिरना ही चाहती थी कि उस निर्भीक कृष्णने उसे लात मारकर नष्ट कर दिया। चौथी और पाँचवीं देवी दो वृक्षका रूप धारण कर कृष्णको डराने आईं पर ऊखलसे बँधे पैरोसे कृष्णने उन्हे मार गिराया। एक देवी साँडका रूप धारण कर मदमत्त हो घूमती हुई सारे गोमण्डलमे उपद्रव मचा रही था। तो निर्भीक कृष्णने अपने हाथोमे उसके गलेको फाड़कर मार डाला। एक समय ( भयंकर जलवृष्टिके कारण ) सारे पशु-पक्षी भयभीत थे, पर्वतके किनारेके पत्थर गिर रहे थे तथा वृक्ष उखड़े जा रहे थे तो कृष्णने गोमण्डलकी रक्षाके लिए अपने हाथोसे गोवर्धन पर्वत उठा लिया ॥११-१५॥

इस प्रकार बलसे किये गये कृष्णके इन अलौकिक कार्योंको सुनकर देवकी बहुत प्रसन्न हुई और कृष्णको देखनेकी इच्छासे, उपवासके बहाने बलरामके साथ गोकुलमें आई तो कृष्णको देखते ही उसके स्तनोंसे दूध गिरने लगा। इस प्रकार मानो उसने कृष्णको नहला ही दिया ॥१६-१७॥

मथुराधिपोऽपि गोष्ठं मार्गयितुं शत्रुमन्यदा प्रययौ ।
प्रागेव तदोपायान्नतो मात्राऽन्यतस्तस्मात् ॥१८॥

अटवीमध्ये प्रवसन् राक्षसीमतिविवृद्धविकृततनुम् ।
उदितोऽट्टहासरौद्रां शरैरहंस्ताटकीं नाम्ना ॥१९॥

ग्रामे शाल्मलिखण्डे सुदुर्भरन्यासमण्डपस्तम्भान् ।
तद्दर्शनान्निवृत्ते निवृत्तपरशङ्कया मात्रा ॥२०॥

प्रतिवृत्य पुनः कंसोऽप्यघोषयद्घोषणां स्वपुर्यैव ।
नैमित्तसमादेशाद्द्विमार्गयिषया सपत्नस्य ॥२१॥

शङ्खेन पूरयति खं य. शरासनं जितश्चं दिव्यम् ।
आरुह्य सिंहवाहां[1] शय्यामिष्टस्य लब्धेति ॥२२॥ युग्मम् ।

तद्वार्त्तासंश्रवणाद्बहुषु च निस्तेजितेषु तत्रैव ।
कंसश्यालोऽप्यायाद् भानु. कृष्णं वने लब्धा ॥२३॥

प्रोत्साह्य सहानैषीन्मथुरामथ सज्जितां महाशय्याम् ।
इन्द्रस्थाने दृष्ट्वा पृष्ट्वा कंसारिरारुक्षत् ॥२४॥ युग्मम् ।

आरोपितज्यमकरोत्कार्मुकमापूरयत्स शङ्खं च ।
सङ्कर्षणोऽप्युपायादुपेत्य पूर्णं तमव्रजयत् ॥२५॥

विज्ञाय चौग्रसेनिर्गोपेनारोपणं महाधनुष ।
कमलानयनाय पुनर्गोपानाज्ञापयामास ॥२६॥

अन्यै सुदु प्रवेशं कालिन्दीहृदमगाधमवगाह्य ।
तत्रोत्थितं महाहिं निहत्य हरिणाऽप्युपचितानि ॥२७॥

---

१. नाटवीं इति हरिवंशपुराणे । २. सिंहवाहामिति धनुषः विशेषणम् इति हरिवंशपुराणे ; नागशय्या इति उत्तरपुराणे ।

एक समय मथुराका राजा कंस अपने शत्रुको ढूँढनेके लिए गोकुल आया, तो यशोदा माता उसके पहले ही किसी बहानेसे कृष्णको कहीं वाहर ले गई। कृष्णने जंगलमे प्रवास करते हुए, विशाल एवं भयानक आकार वाली, तथा भयंकर अट्टहास करती हुई ताटकी नामकी एक राक्षसीको मार डाला ॥१८–१९॥ एक ग्रासमें मण्डपके खम्भे बनानेके लिए रखे हुए बहुत वजन वाले शाल्मलि वृक्षके टुकड़े कृष्णके दर्शनसे ही उठ गये, तब माता निश्चिन्त हो गई कि अब शत्रु इसका कुछ बिगाड़ नही सकता ॥२०॥

इधर कंस ( अपने प्रयत्नमें असफल हो ) लौट आया और उसने निमित्तज्ञानीकी सलाहसे, शत्रुको खोजनेकी इच्छासे अपने नगरमें घोषणा करवाई कि जो भी मनुष्य सिहशय्यापर चढ़कर, जितजय नामके दिव्य धनुषको चढ़ायेगा और शंखकी ध्वनिसे आकाशको गुँजा देगा वह मनवाञ्छित पदार्थ पावेगा ॥२१–२२॥ यह घोषणा सुन बहुतोने प्रयत्न किये पर सब वहीं निस्तेज हो लौट गये। वहाँ ( राजगृहसे ) कंसका राजा भानु भी आया। तथा कृष्णको वनसे फुसलाकर अपने साथ मथुरा ले आया। तदनन्तर कंसके शत्रु कृष्णने इन्द्र-स्थानमे सजी हुई सिह-शय्याको देखकर पूछ-ताछ की और उसपर चढ़ गया। उसने धनुषकी डोरीको चढ़ाकर शखको भी बजा दिया। वहाँ किसी बहानेसे बलरामने आकर कृष्णको शीघ्र ही वहाँसे भगा दिया ॥२३–२५॥ जव कंसने यह जाना कि 'महाधनुपको किसी ग्वालेने चढ़ाया है' तो उसने यमुनाके ( कालीदह नामक ) सरोवरसे कमल लानेके लिए गोपोको आज्ञा दी। तत्पश्चात् कृष्णने दूसरोको प्रवेश करनेमें कठिन, गहरे सरोवरमें घुसकर वहाँ रहनेवाले कालीनागको मारकर कमल तोड़ लिये और ग्वालोके द्वारा मथुरा भिजवा दिये।

पुष्पाणि पुनर्गोपैः प्रहृतान्याज्ञापयत्समालोक्य ।
इह नन्दगोपतनयेनायान्तिवति मल्लयुद्धाय ॥२८॥

हलिनो हरिस्तदानीं श्रुत्वा कुलगोत्रमात्मनोऽप्युच्चैः ।
स्वभ्रातॄणां च वधं कंसायात्यन्तमभिरुष्टः ॥२९॥

गोपैः पुनः प्रतस्थे मथुरामद्यैव मे द्विषद्दस्रः ।
स्वकपापकर्मफलरसमास्वादतां वै दुरात्मेति ॥३०॥
प्रतिवेषकं गृहीत्वा रसं तमापात्यते स्म [1]तालाङ्कः ।
सुव्यालवदनमश्वं व्यापाद्य च केशिनं केशी ॥३१॥

उत्पाट्य दन्तयष्टिं मदोत्कटं भीमदर्शनं द्वारे ।
विनिहत्य वारणेन्द्रं चेन्द्रस्थानं विवेशाशु ॥३२॥

चाणूरवज्रमुष्ट्योर्निपातनं तत्र मल्लयोर्दृष्ट्वा ।
क्रुद्ध्वा समापतन्तं विगृह्य तरसाऽवधीत्कंसम् ॥३३॥

आहूय शेष[2]वचनादाहुक[3]मुन्मुक्तनिगडकं पश्चात् ।
राज्ये समभ्यषिच्यदतूतुषच्चात्मनो ज्ञातीः ॥३४॥

तत्राऽन्यदा प्रभञ्जनविलोलमालाम्बरो वियति वेगात् ।
विद्याधरनृपदूतः प्रोद्वक्त्रैर्वीक्षितः पौरैः ॥३५॥

अभ्येत्य नगरशोभादर्शनपर्याप्तनयनतत्त्वफलः ।
उपसेदिवान् समाजं विष्णोर्विभ्रान्तरिपुजिष्णोः ॥३६॥ युग्मम् ।

उपविश्योपनरेन्द्रं जगाद लब्धक्षणं क्षणाद्विष्णुम् ।
अहमागतोऽस्मि श्रीमन् रजताद्रेस्त्वत्सकाशमिति ॥३७॥

---

१. बलरामः । २. बलरामः, ब्राह्मणग्रन्थेषु शेषस्यावतारो बलरामः ।
३ उग्रसेन ।

तब कंसने यह जानकर कि ये कमल नन्दगोपके पुत्रने तोड़े हैं, कृष्णको मल्लयुद्धके लिए बुलाया ॥२६–२८॥

इधर बलराम-द्वारा अपने उच्चकुल गोत्रकी तथा कसके द्वारा अपने भाइयोके वधकी सब बात मालूम होनेपर कृष्णको कंसके ऊपर अत्यन्त क्रोध हुआ, और वे गोपोके साथ यह कहते हुए चले कि मेरा शत्रु वह दुरात्मा घमण्डी कस आज ही अपने पापकर्मोंका फल चखे ॥२९-३०॥

रास्तेमें कृष्ण और बलरामने केशी नामके राक्षसको जो कि अपना रूप बदलकर सर्पमुख और घोड़ेका रूप धारण कर आया था—मार गिराया। तथा कसके दरवाजेपर बँधे हुए तथा देखनेमें भयानक मत्त हाथीके दाँतोको उखाड़कर उसे भी मार डाला तथा शीघ्र ही इन्द्रस्थानमे प्रवेश किया। वहाँ चाणूर और वज्रमुष्टि नामके दो मल्लोको पटककर मार डाला। तब यह देख क्रोधसे कंस उनके ऊपर टूट पड़ा। कृष्णने उसे भी युद्ध कर मार डाला ॥३१–३३॥ तदनन्तर बलरामको आज्ञासे कृष्णने राजा उग्रसेनको बन्धनोसे मुक्त कर उन्हे बुलाया और उनको राजगद्दी पर बैठाकर अपने परिवारके लोगोको सन्तुष्ट किया ॥३४॥

किसी समय पुरवासियोने आकाशमे बड़ी तेजीसे आते हुए एक विद्याधर राजाके दूतको ऊपर मुँह कर देखा। उस दूतकी माला और वस्त्र वायुसे हिल रहे थे ॥३५॥ नगरकी शोभा देखनेसे जिसने अपने नेत्र प्राप्तिको सफल बना लिया है, ऐसा वह दूत, अपने पक्षसे भटके हुए शत्रुओको जीतनेवाले कृष्णकी सभामे आकर बैठ गया। राजा कृष्णके समीप बैठकर, थोड़े समयमें अवसर मिलते ही कृष्णसे बोला कि—हे धीमन्! मैं विजयार्ध पर्वतसे तुम्हारे पास आया हूँ। वहाँ विद्याधरोका

रथनूपुरस्य भर्त्ता विद्याधरनरपतिः सुकेतुरिति ।
सम्भिन्नस्यादेशात्स्वसुताया. परिपरीक्षार्थम् ॥३८॥

शय्यामिह हरिव्यूढामजितञ्जयमायुधं च सन्निदधौ ।
तस्यैवाऽरोपणत. परीक्षितायाऽन्नभवतीमिति ॥३९॥

सत्यं सुसत्यभामां कन्यां सन्दातुमैच्छदवनीन्द्रः ।
अभ्युदयायैव शुभो विद्याधरनरपसम्बन्ध. ॥४०॥

दूतस्य वाक्यमेवं श्रुत्वा हरिराजगाद यद्येवम् ।
पूर्वकृतपुण्यफलमिदमुपपन्नं न. किमन्यदिति ॥४१॥

प्रतिपूजित. सुदूतो गत्वा स्वनृपाय सर्वमाचख्यौ ।
तमुपेन्द्रमिन्द्रसदृशं बलेन वपुषाप्यतिमनुष्यम् ॥४२॥

परितुष्टोऽसौ खगप स्वयम्प्रभागर्भसम्भवां साध्वीम् ।
मधुसूदनाय कन्यामददादानीय परमद्ध्यौ ॥४३॥

भर्तृप्रवासशोकात्सुविकचा क्लीबचेतसेऽवोचत् ।
जीवद्यशा स्वपित्रे तदैत्य सर्वां स्वकाऽवस्थाम् ॥४४॥

श्रुत्वैव जरासन्धो जामातृनिषूदनोदितक्रोध. ।
निर्दिदेश कालयवनं सूनुं शौरेर्विनाशाय ॥४५॥

सोऽप्यागत्य ससैन्यो मालाऽवर्त्ताख्यपर्वते युध्वा ।
सप्तदशमहायुद्धान्यपाति यदुभिर्महासत्त्वै. ॥४६॥

पुनराहवेष्वधृष्यं भ्रातरमपराजितं नृपोऽन्वशिषत् ।
आगत्य स सङ्ग्रामान् षट्चत्वारिंशतं यदुभिः ॥४७॥

त्रीणि शतान्यपि युध्वा जनार्दनाऽस्त्रप्रपीतरुधिरासु. ।
प्रजगाम यमातिथ्यं यदवोऽप्यारेमुरतितुष्टा. ॥४८॥

राजा रथनूपुरका स्वामी सुकेतु नामका विद्याधर रहता है। उसने अपने संभिन्नमति मन्त्रीकी सलाहसे अपनी पुत्रीके विवाहके निमित्तसे परीक्षाके लिए ही यहाँ सिहवाहिनी शय्या और अजितंजय नामक धनुष रखा था। उस धनुषको चढ़ानेसे आपकी परीक्षा हो गई इसलिए राजाने अपनी आयुष्मती पुत्री सत्यभामाको आपको देनेकी इच्छा की है। विद्याधर और नरेन्द्रोका यह शुभ सम्बन्ध कल्याणके लिए ही होगा ॥३६-४०॥

दूतके इन वचनोंको सुन कृष्णने कहा कि यदि ऐसा है तो यह हमारे पूर्व जन्ममे किये पुण्य फलके सिवाय और क्या हो सकता है। फिर दूत अच्छी तरह सम्मानित हो चला गया और अपने राजासे, बलमे इन्द्रके समान तथा शरीरसे अलौकिक उस कृष्णके सम्बन्धमे सब समाचार कहे॥४१-४२॥विद्याधर भी प्रसन्न हो वहाँ आया और उसने अपनी रानी स्वयम्प्रभाके गर्भसे उत्पन्न साध्वी सुलक्षणा कन्या बड़ी विभूतिके साथ कृष्णके लिए दे दी ॥ ४३ ॥

इधर कंसकी स्त्री जीवद्यशा अपने पतिके मारे जानेसे दुखी हो, बालोंको फैलाये हुए, अपने साहसहीन पिताके पास गई और अपनी सब हालत कहने लगी ॥४४॥ जामाताकी मृत्यु सुनते ही जरासन्धको बड़ा क्रोध आया और अपने कालयवन नामक पुत्रको कृष्णका नाश करनेकी आज्ञा दी ॥४५॥ उसने सेनासहित मालावर्त नामके पर्वत पर आकर सत्तरह महायुद्ध किये और शक्तिशाली यादवोंसे लड़ता हुआ मारा गया ॥४६॥ तब जरासन्धने अपराजित नामके अपने भाईको, जो कि युद्धोमे निर्भीक था, लड़ने भेजा। उसने आकर यादवोंके साथ तीन सौ छियालीस युद्ध किये और जब कृष्णके अस्त्रने उसका रुधिर पी लिया और आयु समाप्त कर दी तो वह इस संसारसे चल बसा। इससे सभी यादव अति सन्तुष्ट हो आनन्द मनाने लगे ॥४७-४८॥

अथ शौरिपुराऽधिपतेः शिवदेवी श्रीमतः प्रिया राज्ञी ।
स्वप्नानैक्षिष्टेमांस्तुरीययामे सुखं शयिता ॥४९॥

शरदभ्रसन्निकाशं सुगन्धिदानानुसार्यलिव्रातम् ।
द्विरदेन्द्रमिन्द्रनागप्रतिमं स्वप्ने समद्राक्षीत् ॥५०॥

लोलप्रलम्बसास्नं मनोज्ञशृङ्गं सुतुङ्गसत्ककुदम् ।
मन्द्रोद्रेकितमुखरं वृषं च हृष्टं निरैक्षिष्ट ॥५१॥

बालेन्दुकल्पदंष्ट्रं, विजृम्भमाणं स्फुरत्सटाटोपम् ।
व्यावर्तितलाङ्गूलं मृगेन्द्रमैक्षिष्ट पिङ्गाक्षम् ॥५२॥

फुल्लाऽम्भोजनिषण्णां सितद्विपेन्द्रात्तकुम्भनिर्गलितैः ।
अभिषेकमवाप्नुवतीमपश्यदीशा श्रियं क्षीरैः ॥५३॥

सर्वर्तुकुसुमचित्रं स्वामोदापूर्णसर्वदिग्विवरम् ।
देव्या तदा प्रलम्बं सुमनोदामद्वयं दृष्टम् ॥५४॥

व्याकीर्णकिरणसालः कुमुद्वतीबन्धुरुद्यतो व्यभ्रे ।
ददृशेऽम्बरे प्रपूर्णः शशाङ्कमुख्या शशाङ्कश्च ॥५५॥

विद्धाऽसिताऽन्धकारं कमलाकरवत्सलं समुद्यन्तम् ।
उदयाद्रिशिखरिशेखरमद्राक्षीद्श्रीलहरिदश्वम् ॥५६॥

स्वैरक्रीडासक्तौ परस्परप्रेमसङ्गतौ शुभ्रौ ।
ईक्षाम्बभूव देवी मनोज्ञरूपा झषौ मुदितौ ॥५७॥

व्याकोशपद्मपिहितौ सुरभिजलाऽपूरितोदरौ देव्या ।
आत्मकुचकलशसदृशौ सुवर्णकलशावदृश्येताम् ॥५८॥

अथानन्तर शौरीपुरके राजा श्रीमान् समुद्रविजयकी प्यारी रानी शिवदेवीने रात्रिके चौथे पहरमें सुखसे सोते हुए ये १६ स्वप्न देखे ॥४९॥ ( पहले ) स्वप्नमें उसने शरत्कालीन मेघके समान (श्वेत) तथा जिसके सुगन्ध मदजल पर भ्रमर-पंक्ति मँडरा रही थी और जो ऐरावतके समान था ऐसे गजेन्द्रको देखा ॥५०॥ दूसरे स्वप्नमे एक ऐसे हृष्टपुष्ट बैलको देखा, जिसके गलेकी लम्बी सास्ना ( खाल ) हिल रही थी, जिसके सुन्दर सींग थे, अच्छा ऊँचा कन्धा था तथा जो गम्भीर ध्वनिसे दल्हार रहा था ॥५१॥ तीसरे स्वप्नमें उसने एक ऐसे जम्हाई लेते हुए सिंहको देखा जिसकी दाढ़ें बालचन्द्रमाके समान थी, तथा जिसकी सटा हिल रही थी और जो अपनी पूँछ मोड़े हुए था तथा जिसके नेत्र पिंगल वर्णके थे ॥५२॥ चौथे स्वप्नमें उस रानीने विकसित कमल पर बैठी हुई लक्ष्मीको देखा जिसे श्वेत हाथी दूधके कलशोसे अभिषेक करा रहे थे ॥५३॥ पाँचवे स्वप्नमें उस देवीने सब ऋतुओके कुसुमोंसे चित्रित लटकती हुई दो मालाएँ देखी जिसकी सुगन्धिसे समस्त दिशाएँ भर रही थीं ॥५४॥ छठवें स्वप्नमे उस चन्द्रमुखी रानीने स्वच्छ आकाशसे उगते हुए कुमुदिनियोंके मित्र पूर्ण चन्द्रमाको देखा, जो अपनी किरणे फैला रहा था ॥५५॥ सातवें स्वप्नमे उसने उगते हुए शोभायुक्त कमलोंके मित्र सूर्यको देखा जिसने काले अन्धकारको नष्ट कर दिया था, तथा जो उदयाचल पर्वतके मुकुटस्वरूप था ॥५६॥ आठवे स्वप्नमें उस मनोज्ञ रूपवाली देवीने, प्रसन्न एवं शुक्ल दो मछलियोंको देखा जो स्वच्छन्द क्रीड़ा कर रहीं थीं, तथा आपसमें स्नेहयुक्त थी ॥५७॥ नवम स्वप्नमें उस रानीने अपने स्तनोके समान ही बड़े दो कलशोको देखा जो सुगन्धित जलसे पूरित थे तथा विकसित कमलोंसे ढँके हुए थे ॥५८॥ दशवें स्वप्नमे उस

स्वच्छसलिलाभिपूर्णं प्रविकसिताऽनेककुसुमसङ्कीर्णम् ।
नानाविहङ्गरंगं ददर्श देवी सरो रम्यम् ॥५९॥

व्याघूर्णितोर्मितरलं प्रवालमुक्तामणिप्रभाच्छुरितम् ।
आलोकिताऽक्षिकान्तं प्रमत्तयादोगणं जलधिम् ॥६०॥

मृगराजमस्तकस्थं नानारत्नप्रभाविनिष्यन्दि ।
सिंहासनमासन्नं मृद्वास्तीर्णं ददर्शेशा ॥६१॥

आमुक्तहेमदामप्रलम्बघण्टाप्रणादवाचालम् ।
बहुभेदभक्तिचित्रं विमानमालोकते स्मार्या ॥६२॥

रत्नप्रभावभासं समुन्नताऽनेककेतुसम्भूषम् ।
अवभिद्य भुवमुपेतं भगवत्याऽदर्शि भवनं च ॥६३॥

वैडूर्यसूर्यकान्तप्रभृत्यशेषोररत्नसद्राशिः ।
समदर्शि दीप्तदीधितिपिनद्धशक्रायुधो देव्या ॥६४॥

उदयदिवाकराभं ज्वलन्तमुदितार्चिषं च हुतभक्षम् ।
अपधूममत्रभवती निरैक्षताऽक्षिप्रियं प्रीता ॥६५॥

एतान् षोडशशुभान् स्वप्नान् सन्दर्श्य मातरं भगवान् ।
अवतीर्य त्रिदिवाग्रादिन्द्रानाकम्पयन् स्थानात् ॥६६॥

धर्मेन्दुनिर्मलाना मिवद्विपेन्द्राकृतिं गृहीत्वेन ।
प्रविवेश शुक्लपक्षे श्रावणनाम्न्य सतन्वाम् ॥६७॥

राज्ञी ततः प्रभाते कृतकौतुकमङ्गला मनोज्ञ पतिम् ।
स्वप्नानामप्राक्षीत्फलमाचख्यौ नृपश्चैवम् ॥६८॥

देवीने स्वच्छ जलसे पूर्ण एक मनोहर सरोवर देखा जो कि खिलते हुए अनेक प्रकारके फूलोंसे तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे भरा हुआ था ॥५९॥ ग्यारहवे स्वप्नमें उस रानीने उठती हुई तरंगोसे चंचल तथा नेत्रोंको प्रिय समुद्रको देखा, जो मूँगा मोती आदि मणियोंकी कान्तिसे व्याप्त था तथा जिसमें मस्त जलजन्तु पड़े हुए थे ॥६०॥ वारहवे स्वप्नमे उस देवीने समीपमें सिहके मस्तक पर रखे हुए सिंहासनको देखा जिसमेसे रत्नोंकी प्रभा निकल रही थी तथा जिस पर कोमल गलीचा विछा हुआ था ॥६१॥ तेरहवे स्वप्नमें उस माताने नाना प्रकारकी रचनाओंसे चित्रित एक विमानको देखा जो कि मोती और सोनेकी रस्सीमे लटकते हुए घण्टोंकी ध्वनिसे शब्दायमान था ॥६२॥ चौदहवे स्वप्नमे उस भगवतीने रत्नोंकी प्रभासे प्रकाशमान तथा पृथ्वीको भेदन कर निकलते हुए धरणीन्द्रके भवनको देखा जो कि उड़ती हुई अनेक प्रकारकी पताकाओंसे भूषित था ॥६३॥ पन्द्रहवे स्वप्नमे उस रानीने वैडूर्य, सूर्यकान्त आदि सम्पूर्ण रत्नोंकी एक वड़ी भारी राशि ( ढेर ) देखी जो कि चारो तरफ कान्ति फैला रही थी तथा वज्रमणिसे युक्त थी ॥६४॥ सोलहवे स्वप्नमे उस प्रसन्न रानीने नेत्रोंको प्रिय एवं धूम रहित जलती हुई अग्नि देखी जिसकी लपटें ऊपर जा रही थीं तथा जो उगते हुए सूर्यके समान आभावाली थी ॥६५॥

भगवान् नेमिनाथ इन सोलह शुभ स्वप्नोंको माताको दिखला कर, इन्द्रोंके आसनोंको कम्पाते हुए, स्वर्गके अग्रभाग अर्थात् जयन्तविमानसे अवतरित हो और श्वेत हाथीका रूप धारण कर श्रावण शुक्ल सप्तमीके दिन माताके मुखचन्द्रसे गर्भमें प्रवेश किया ॥६६-६७॥ तदनन्तर प्रातःकाल होते ही वह रानी प्रातः कृत्य सम्पन्न करके शृंगार कर अपने पतिके पास गई और

कैलासकूटगौरद्विपेन्द्रसन्दर्शनेन तनयस्ते ।
उत्पत्स्यते महात्मा द्विरदेन्द्रविडम्बिगतिलील: ॥६९॥

वृषभादलङ्करिष्यति भामिनि वृषभेक्षणाद्वृषस्कन्ध: ।
गोमण्डलमिव वृषभ: सकलजगन्मण्डलमिहैक: ॥७०॥

भविताऽत्र पुरुषसिंहो वनराजनिरीक्षणाद्वनजनेत्रे ।
हरिरिव परैरधृष्यस्तपोवनाऽधीश्वरो धीर: ॥७१॥

पयसा प्रसूतमात्र: पयोऽम्बुधे: सुतनु मेरुगिरिशिखरे ।
अभिषेक्ष्यते सुरेन्द्रै: श्र्यभिषेकविलोकनात्कान्ते ॥७२॥

दामद्वयोपलब्धेरनन्तविज्ञानदर्शनो भविता ।
लोकत्रितयनिरन्तरसंव्यापियश: सुरभिगन्धे ॥७३॥

प्रह्लादयिष्यति जगत् प्रिये दयाज्योत्स्नया जिनशशाङ्क: ।
शशलाञ्छनसमवदन: शशलक्ष्मनिरीक्षणात्सकलम् ॥७४॥

स्वमहिम्नाऽहितदर्पान् रसानिवाहस्करो विशोषयिता ।
अज्ञानमन्दतमसां भास्करदृष्टेश्च नाशयिता ॥७५॥

अनुभूय विषयसौख्यं पुनरन्ते दिव्यमव्ययममेयम् ।
निर्वृत्तिसुखमनुभविता सुखायमानानिमिषयुग्मात् ॥७६॥

अलकेशमन्दिरोपममस्मद्वेश्मापि निधिभिरापूर्णम् ।
हर्षापूर्णं च जगद् भविता वरपूर्णकुम्भाभ्याम् ॥७७॥

सरस: सरोजनेत्रे प्रशस्तशुभलक्षणावकीर्णतनु ।
दयितस्तेऽत्र भविष्यति नाशयिता लोभतृष्णाया: ॥७८॥

उससे स्वप्नोका फल पूछने लगी। तब राजाने इस प्रकार उत्तर दिया कि–हे देवि! कैलाशके शिखरके समान गौरवर्ण गजेन्द्रको देखनेसे तुम्हें एक महात्मा होगा जो हाथीके समान ही धीर गम्भीर होगा ॥६८-६९॥ हे भामिनि, वृषभके देखनेसे वह उन्नत-स्कन्धवाला तुम्हारा पुत्र अकेला ही सारे भूमण्डलको वृषभ अर्थात् धर्मसे सुशोभित करेगा जैसे उत्तम बैल गोमण्डलको सुशोभित कर देता है ॥७०॥ हे कमलनेत्रे! सिंहके देखनेसे तुम्हारा पुत्र पुरुषोमे सिहके समान होगा। वह सिंहके समान ही किसीसे न डरेगा। तथा तपोवनका स्वामी और धीर होगा ॥७१॥ हे सुतनु, हे कान्ते! लक्ष्मीका अभिषेक देखनेसे तुम्हारे पुत्रको उत्पन्न होते ही सभी इन्द्र सुमेरुपर्वतपर ले जाकर क्षीर-सागरके जलसे अभिषेक करेंगे ॥७२॥ हे सुरभिगन्धे, दो मालाओ-के देखनेसे वह अनन्तदर्शन और अनन्तज्ञानवाला होगा और तीनों लोकोंमे उसका यश निरन्तर व्याप्त होता रहेगा ॥७३॥ और हे प्रिये! पूर्ण चन्द्रमाके देखनेसे चन्द्रमाके समान मुखवाला वह जिन-चन्द्र अपनी दयारूपी ज्योत्स्नासे सारे संसारको प्रसन्न करेगा ॥७४॥ सूर्यके देखनेसे, वह पुत्र, सूर्य जैसे पानीको सोख लेता है, उसी तरह अपनी महिमासे शत्रुओंके दर्पको नष्ट कर देगा तथा अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट कर देगा ॥७५॥ और कल्लोल करती दो मछलियोके देखनेसे वह पुत्र विषय-सुखोको अनुभव कर अन्तमे दिव्य, अविनाशीक, अमेय मोक्ष सुखका अनुभव करेगा ॥७६॥ तथा उत्तम दो पूर्ण कलशोको देखनेसे हमारा घर भी कुबेरके मन्दिरके समान ही निधियोसे पूर्ण होगा और सारा संसार भी हर्षसे पूर्ण होगा ॥७७॥ हे कमलनेत्रे! सरोवरके देखने-से तुम्हारे पुत्रका शरीर उत्तम शुभ लक्षणोसे व्याप्त होगा और वह लोभ-तृष्णाका नाश करनेवाला होगा ॥७८॥ तथा समुद्रके

जलधेर्जलधिगभीरो नानानील्यापगाशतसमृद्धम् ।
अल्पाम्बुपाततृषितानुपलम्भयिता श्रुतसमुद्रम् ॥७९॥

प्रौढा(बद्धा)अलिसणिमुकुटैर्देवेन्द्रैरादरेण परिवीतम् ।
सिंहासनमारोढा सिंहासनदर्शनात्स्वप्ने ॥८०॥

भौमे विमानदृष्टेर्विमाननाथाऽर्च्यचारुचरणयुग्मः ।
अवचुच्युवे विमानो विमानमुख्यादिहानुपम. ॥८१॥

भवपञ्जरस्य भेत्ता भविता भवनोपलम्भतो भद्रे ।
ज्ञानत्रयेण सार्द्धं जनितात्र जनितोत्सवे जगति ॥८२॥

नानाप्रकारभासुररत्नमहाराशिदर्शनादार्ये ।
आयिष्यते शरण्य. सरलनिर्मलगुणसमूहेन ॥८३॥

दीप्ताऽपधूमवह्नेर्विलोकनाल्लोकलोचनो भगवान् ।
धक्ष्यति स कर्मकक्ष मंक्षुतयात्र योगदहनेन ॥८४॥

वरकनककुण्डलोपलचञ्चलप्रभाविद्युदावलिकलिताः ।
प्राकृतनरेश्वरा इव सुन्दरि सेन्द्राः सुरा. सदसि ॥८५॥

विनयावनतमौलिकोटीर्मिलदासनद्युतिवितानमुखा· ।
परिवारतां प्रतिदिनं यन्माहात्म्यात्प्रयास्यन्ति ॥८६॥ युग्मम् ।

शिथिलावलम्बिशिरस. ललितकलापावगलितमन्दारा· ।
अतिसम्भ्रमेण गुञ्जन्नूपुररसनावलीवलया. ॥८७॥

त्वद्वचनवियोगेच्छा· प्रसाधनादिक्रियासु ते नियतम् ।
परिचारिका· प्रसादादिन्द्राण्यो यस्य भवितारः ॥८८॥युग्मम् ।

देखनेसे वह समुद्रके समान गम्भीर एवं नाना नीतिरूपी सैकड़ों सरिताओंसे समृद्ध तथा अल्पज्ञानरूपी जलके पानसे प्यासे लोगों-को श्रुत समुद्रको प्राप्त करानेवाला होगा ॥७९॥ स्वप्नमें सिंहासन-के देखनेसे वह पुत्र ऐसे सिंहासन पर आरोहण करनेवाला होगा जिसे अपने मणिमुकुटो पर अञ्जलि बाँधे इन्द्रादि देव आदरसे घेरे रहेंगे ॥८०॥ तथा विमानके देखनेसे वह मानरहित अनुपम पुत्र इस पृथ्वीमें मुख्य विमान अर्थात् जयन्त स्वर्गसे अवतरित होगा, जिसके चरणोकी पूजा इन्द्र करेंगे ॥८१॥ और हे भद्रे ! भवनको देखनेसे वह भवबन्धनका काटनेवाला होगा तथा संसारमे आनन्द पैदा कर ज्ञानत्रयके साथ उत्पन्न होगा ॥८२॥ तथा हे आर्ये ! नाना प्रकारकी कान्तिमान् रत्नोकी महाराशि देखनेसे वह सरल और निर्मल गुणोके समूह-द्वारा सबको शरण देनेवाला होगा ॥८३॥ और धूमरहित जलती हुई अग्निको देखनेसे संसार-के लोचनस्वरूप वे भगवान् शीघ्र ही योगरूपी अग्निसे समस्त कर्मोको नष्ट कर देंगे ॥८४॥ हे सुन्दरि ! जिसके माहात्म्यसे इन्द्रो सहित समस्त देव, जिनका मुख उत्तम सोनेके कुण्डलोसे लगे मणियोकी चंचल प्रभारूपी विद्युत् रेखासे शोभित है, तथा जो विनयसे झुके मुकुटोके अग्रभाग और भगवान्के सिंहासनकी कान्तिके मिलनेसे प्रकाशित है, साधारण राजाओके समान ही प्रतिदिन सभामें परिवारके जैसे बने रहेंगे ॥८५-८६॥ तथा जिसके पुण्य प्रसादसे वे इन्द्राणियाँ, जिनके अत्यन्त वेगसे चलनेके कारण, ढीले बँधे हुए शिरके बालोंकी सजावटसे मन्दार-पुष्प गिर रहे हैं, तथा जिनके मणिके बने बिछुए, करधौनी और हाथके कंकण मधुर ध्वनि कर रहे है, तथा जो तुम्हारी आज्ञासे ही विश्राम लेना चाहेगी—तुम्हारे स्नान शृंगार आदि कार्योंको ठीक रूपसे करनेवाली दासियाँ होगी ॥८७-८८॥ और विशेष

किं बहुना स्वप्नविधेः फलमिदमेतस्य ननु सुपर्याप्तम् ।
तस्यावां यास्यावो यद्गरिमाणं त्रिलोकगुरोः ॥८९॥

षाण्मासिकधनवृष्टेः प्रागेवोत्पत्तिरनुमिताऽस्माभिः ।
आस्माकीने वंशे त्रिजगन्नाथस्य हि जिनस्य ॥९०॥

इत्युक्तं स्वप्नफलं पत्या संश्रुत्य संश्रितव्रतिका ।
अङ्कागतमिव तनयं मत्त्वेति च सा संजहर्षे ॥९१॥

वैश्रवणोऽपि च तस्मिन् समये शक्राज्ञया समागत्य ।
स्रग्वसनालङ्कारैर्दिव्यैरानर्च जिनपितरौ ॥९२॥

प्रतिदिनमर्द्धचतुर्थां हिरण्यकोटिर्ववर्ष वसुधाराः ।
आजन्मनश्च भर्त्तुर्भगवद्गुरुमन्दिरे धनदः ॥९३॥

त्रिदशाऽप्सरोनियोजितनानाविधसम्पदोश्च व्यतीयुः ।
जिनगुर्वोर्नवमासाः सुरेन्द्रशच्योरिव सुखेन ॥९४॥

भगवांस्ततः प्रजज्ञे देववधूहस्तपद्मपट्टचरणः ।
वैशाखशुक्लपक्षे त्रयोदशदिने जगच्चलयन् ॥९५॥

सर्वे समेत्य तूर्णं नानाविधयानवाहनाऽनीकाः ।
नीता महाविभूत्या जिनेन्द्रमिन्द्रा गिरीन्द्राग्रे ॥९६॥

विधिना समभ्यषिञ्चन् क्षीरोदधिवारिपूर्णसत्कुम्भैः ।
नानाविचित्रैः स्तोत्रैः प्रतुष्टुवुश्चापि परितुष्टाः ॥९७॥

आनीय जिनं पश्चादानन्दकनाटकं समाक्रीड्य ।
भगवत्पितरौ चेष्टान् स्वानावासान्ययुर्देवाः ॥९८॥

देवाप्सरःसमूहैररिष्टनेम्यङ्कगातकैर्भगवान् ।
रेमेऽभिवर्द्ध्यमानो भोगैर्धनदोपनीतैश्च ॥९९॥

क्या कहूँ इन स्वप्नोका इतना ही विशेष फल है कि हम दोनो उस तीन लोकके गुरु होनेकी ( माता-पिता होनेकी ) गरिमा ( महत्त्व ) को प्राप्त होंगे ॥८९॥ हम लोगोने छः माहतक धन-वृष्टि होनेसे पहले ही अनुमान कर लिया था कि हमारे वंशमे त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरका जन्म होगा ॥९०॥

इस प्रकार पतिसे कहे गये स्वप्नके फलको सुनकर वह व्रत-नियम पालनेवाली रानी पुत्रको गोदमे आये हुएके समान मानकर अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥९१॥

उस समय इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने आकर जिन-भगवान्‌के माता-पिताकी दिव्यमाला, वस्त्र और भूषणोसे पूजा की। कुबेरने भगवान्‌के जन्मतक उनके माता-पिताके घर प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ सुवर्णकी वृष्टि की ॥९२-९३॥ इस प्रकार देवों और देवाङ्गनाओसे दी गई नाना प्रकारकी सामग्री भोगते हुए, इन्द्र और इन्द्राणीके समान, भगवान्‌के माता-पिताके नवमास सुख-पूर्वक बीत गये। ॥९४॥

तत्पश्चात् संसारको कम्पित करते हुए, वैशाख शुक्ल त्रयोदशीके दिन देवाङ्गनाओंके करकमलोके भ्रमरके समान वे भगवान् जन्मे ॥९५॥ तब शीघ्र ही नाना प्रकारके यान वाहन और सेना लेकर सभी इन्द्र आये और जिनेन्द्रको बड़े उत्सवके साथ सुमेरुपर्वतपर ले गये ॥९६॥ वहाँ उन लोगोने क्षीरसागरके जलसे भरे हुए उत्तम कलशोसे भगवान्‌का विधिपूर्वक अभिषेक किया और प्रसन्न होकर नाना प्रकारके स्तोत्रोसे इनकी स्तुति की। ॥९७॥ फिर भगवान्‌को माता-पिताके पास ले आये और आनन्द नामके नाटकको खेल अपने इष्ट स्थानोको चले गये ॥९८॥ तत्पश्चात् वे भगवान् अरिष्टनेमि शब्दसे युक्त लोरी गीत गानेवाले देवाङ्गनाओसे तथा कुबेरके द्वारा लाये गये नाना साधनोसे, क्रीड़ा करने लगे ॥९९॥

अथ मागधोऽपि मरणं श्रुत्वा भ्रातुर्दशार्[1]हलब्धाय ।
क्रुद्धोऽभ्ययात्ससैन्यो यदवोऽप्यर्थं समासन्न ॥१००॥
उत्थाप्य तदा मथुरां वीरपुरं चापि शौरिनगरं च ।
अपरार्णवोपकण्ठं दुर्गं निशि सेर्षया प्रचयुः ॥१०१॥
अनुमार्गमेव तेषां प्रजग्मिवानन्तरं जरासन्ध ।
चितकां प्रकृत्य रुदतीं यादवपूर्वाभिसम्बन्धात् ॥१०२॥
स्थविरीभूय च करुणं विलपन्तं वीक्ष्य देवतां काञ्चित् ।
वृष्णिविनाशं श्रुत्वा तस्याः श्रद्धाय चाववृते ॥१०३॥
कृष्णोऽपि दर्भशय्यां शयितो नियमाऽन्वितोऽष्टमभक्तम् ।
स्थानेप्सया तु चक्रे समुद्रतीरे ससीरधरः ॥१०४॥
तेनाऽमरेन्द्रवचनान्निवर्तयामास सागरं सद्य. ।
देवो गौतमनाम्ना न्यघूर्णितोत्तुङ्गनक्रधरम् ॥१०५॥
चक्रे च कृष्णपुण्यैर्भगवद्भक्त्या च धनपतिर्नगरम् ।
नवयोजनविस्तीर्णां द्वारवतीं द्वादशायामम् ॥१०६॥
सहसैव सामुद्रात्समुद्गता दैत्यराजनगरीव ।
सुतरां रराज गगनादवतीर्णा साल्केवास्मिन् ॥१०७॥
तत्रेष्टविषयभोगैर्दिव्यैररमन्त यादवा हृष्टा. ।
कंसभयरसानभिज्ञा दिवीव देवा. सुरतसक्ता. ॥१०८॥
वणिज कदाचिदुदधौ दिङ्मूढा केचिदागतास्तत्र ।
आदाय रुचिररूपाण्यनन्यलभ्यानि रत्नानि ॥१०९॥
प्राविशत ते प्रजित्वा राजगृहं तान्युपायनं राज्ञे ।
दृष्ट्वा विस्मितहृदयो नरलोकसुदुर्लभानि नृप. ॥११०॥
कस्यान्यामूनि दिव्यान्यतुल्यसाराणि चारुरत्नानि ।
इति पप्रच्छ विशस्तांस्तेऽपि तदेवं समाचख्यु. ॥१११॥

---

[1]. दशार्हेति यदूना पूर्वज —अत्र यदुसत्र इत्यर्थः ।

इधर मगधराज जरासन्ध, अपने भाईका मरण सुनकर यादवोंके ऊपर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने सेनाके साथ चढ़ाई कर दी। तब यादव भी अपने हितकी बात सोचकर, रात्रिमे ही मथुरा, वीरपुर और शौरिनगर छोड़ बदला लेनेकी भावनासे पश्चिम समुद्रके पास एक दुर्गमें चले गये ॥१००-१०१॥ तब जरासन्ध मार्गमे उनका पीछा करते हुए चला पर उसने बीचमें ही, चिता बनाकर रोती हुई किसी देवीको देखा जो बुढ़ियाका रूप बनाकर यादवोके प्रति विशेष स्नेह होनेसे करुण विलाप कर रही थी। जरासन्ध उससे यादवोंका विनाश सुनकर और उसके वचनोपर विश्वासकर लौट आया ॥१०२-१०३॥

इधर कृष्णने भी समुद्रके किनारे स्थान पानेकी इच्छासे अपने भाई बलरामके साथ व्रत करते हुए, कुशकी शय्या पर सोकर अष्टम भक्त व्रत किया ॥१०४॥ तब इन्द्रकी आज्ञासे गौतम नामके देवने ऊँची उठती तरंगोंवाले समुद्रको शीघ्र ही हटा दिया ॥१०५॥ और कुबेरने कृष्णके पुण्योदय और भगवान्‌की भक्तिसे नव योजन चौड़ी तथा बारह योजन लम्बी द्वारिका नगरीका निर्माण कर दिया ॥१०६॥ इस प्रकार समुद्रसे सहसा निकली हुई वह नगरी ऐसी मालूम होती थी जैसे राक्षसोकी राजधानी हो, अथवा मानो स्वर्गसे अलकापुरी ही अवतीर्ण हुई हो ॥१०७॥ वहाँ यादवगण क्लेश एवं भय रहित हो मनवाञ्छित दिव्य विषय-भोगोको भोगने लगे ॥१०८॥

एक समय समुद्रमे भूले-भटके कुछ वणिक् द्वारकापुरी आये और वहाँसे सुन्दर एवं अन्यत्र दुर्लभ रत्नोको ले जाकर राजगृहमें राजा ( जरासन्ध ) के लिए भेंट-स्वरूप दिया। तब राजा इस लोकमें अत्यन्त दुर्लभ रत्नोंको देख बड़ा विस्मित हुआ और पूछने लगा कि इन अनुपम दिव्य एवं मनोहर रत्नोंको तुम लोगोने

नरदेव देवलोकप्रतिनिधिरूर्जस्वला दशार्हाणाम् ।
नगरी न नाम भूमावपरा पूरस्ति तत्सदृशी ॥११२॥

यस्याश्चलोर्मितरलो भ्रमन्महाग्राहसंकुलो जलधिः ।
परिखीकृतः स्वरत्नप्रभापरिक्षेपजलपुष्पः ॥११३॥

प्रासादशिखरनद्धप्रोद्धीधितिदीप्तरत्नभासाभिः ।
अज्ञातभाविशेषौ चन्द्रादित्यौ सदा यस्याम् ॥११४॥

कान्ताभिरभिरमन्ते याढवा यस्या हि सौधहर्म्येषु ।
अविभाव्यमानशोभा सिताभ्रगर्भाऽमरद्वन्द्वे ॥११५॥

सर्वातिरिक्ततेजा शरद्दिवस्वानिव च सुदुष्प्रेक्ष्यः ।
परिघगुरुबाहुयुगलो व्यूढोरस्को गिरिप्रांशुः ॥११६॥

मत्तद्विपेन्द्रगामी शरवच्छातोदरो महासत्त्वः ।
योऽरिष्ववज्ञभावादायुधयोग्येषु नाद्रियते ॥११७॥

यदुवंशवर्द्धमानो जनार्दनो निःसपत्नमिष्टतमान् ।
भोगानुपभुञ्जानो यामधितिष्ठत्यतीतभयः ॥११८॥ त्रिकम् ।

तस्या कुबेररचिताऽनेकसुरत्नावभासितगृहायाः ।
आनीतान्यस्माभिर्नृपेन्द्र रत्नान्यनर्घ्याणि ॥११९॥

इति यदुवंशख्यातिं श्रुत्वाऽमर्षाग्नितप्तताम्राक्षः ।
विससर्ज मन्त्रिवचनान्नाम्ना जितसेनकं दूतम् ॥१२०॥

कहाँ पाया है। तब उन लोगोने इस प्रकार कहा कि हे नरदेव ! दूसरे स्वर्गलोकके समान यादवोका एक समृद्ध नगर है। उस सरीखा नगर तो पृथिवीमे और कोई नही है ॥१०९-११२॥ उसकी खाईके रूपमें, अनेक मगर-मच्छसे व्याप्त, चंचल तरंगोवाला समुद्र है तथा वहाँ समुद्रके रत्नोकी प्रभासे मिला हुआ जल ही पुष्पोका काम देता है ॥११३॥ जिस नगरीमें महलोके शिखरमें लगे हुए उन्नत कान्तिवाले चमकीले रत्नकी किरणोंमें और चन्द्र एवं सूर्यके प्रकाशमें कोई विशेषता नही मालूम होती ॥११४॥

उस नगरीके महलोमें यादवगण अपनी पत्नियोके साथ सदा अभिरमण करते है, उन्हें स्वच्छ आकाशमें चलनेवाले सूर्य और चन्द्रमामें कोई अन्तर नही मालूम पड़ता है अर्थात् उन्हे रात्रि दिनका कोई भेद नहीं मालूम होता है ॥११५॥ उस नगरीमे यदु-वंशमें उत्पन्न कृष्ण, शत्रुरहित निर्भय होकर, मनवांछित भोगोको भोगता हुआ रहता है। वह महातेजस्वी है तथा शरत् कालीन सूर्यके समान तीक्ष्ण होनेसे उसपर दृष्टि नहीं ठहरती है, उसके बाहु अति लम्बे एवं विशाल हैं, उसका वक्षःस्थल भी विशाल है। वह पर्वतके समान उन्नत तथा गजके समान मत्तगतिवाला है; बाणके समान कृशोदर, एवं महाशक्तिशाली वह कृष्ण तिरस्कार भावसे आयुध चलानेमे क्षम शत्रुओकी भी परवाह नहीं करता ॥११६-११८॥

हे राजन् ! हमलोग उस नगरीसे ही ये अनमोल रत्न लाये हैं जहाँ कि कुबेरके द्वारा बनाये गये एवं अनेक अच्छे रत्नोसे प्रकाशित गृह हैं ॥११९॥

इस प्रकार यदुवंशकी ख्याति सुनकर उसके नेत्र क्रोधरूपी अग्निसे लाल हो गये और उसने मन्त्रियोंकी सलाहसे अजितसेन नामके दूतको यादवोंके पास भेजा ॥१२०॥ दूत कर्मकी सभी

सोऽपि क्रमेण गत्वा द्वारवतीमाप सर्वविदितार्थः ।
उद्यानसुरभिपवनैरपनीताऽध्वश्रमः शिशिरैः ॥१२१॥

ध्यानमिव पुण्यकर्मा पुरमुरुवेश्मावलीं विसृतदृष्टिः ।
प्रविवेश नगरनारीविलोचनातिथ्यमुपगच्छन् ॥१२२॥

आसाद्य राजभवनं महाप्रतीहारचोदितागमनः ।
समगाहत राजसभां विचित्रवेषैर्नृपैः पूर्णाम् ॥१२३॥

अध्यास्य यथोद्दिष्टं ततो मुहूर्त्तात्प्रवक्तुमारभत ।
इत्थं हिताय भवतां प्रशास्ति मगधेश्वरः प्रणयात् ॥१२४॥

यच्छङ्कया प्रविष्टा यूयमिहाऽम्भोधिसंकटं दुर्गम् ।
एकोऽपि तेन तावत्कृतापकारो न हि भवत्सु ॥१२५॥

युष्मद्गुणित्ववेदी प्रणाममात्रप्रसादनीयोऽसौ ।
जामातृसगर्भादेः वधाभियातोऽपि यदि नाम ॥१२६॥

यद्यपि कृताऽपकारा यूयं न नृपोऽभिलक्ष्येत्प्रणतिम् ।
प्रणतिप्रसादसुमुखाः कृताऽपराधेष्वपि हि सन्तः ॥१२७॥

यदि न प्रणाममतयो दुर्गाऽवष्टम्भकारणाद्यूयम् ।
स्वभुजाऽवलेपमानी सहेत कथमुन्नतानन्यान् ॥१२८॥

तच्छीघ्रमेव गत्वा प्रणिपातपुरःसराः प्रसादयत ।
यदि वंशव्युच्छित्तिं नेच्छत भवतां जरासन्धम् ॥१२९॥

इति दूतवाक्यमेते निशम्य भिन्नभ्रुवोऽधिकं प्रोष्या.[१] ।
क्रोधाभिताम्रनयनाः कृष्णप्रमुखाः प्रतिजगर्जुः ॥१३०॥

---

१. चिरकालेन प्रवसिता इत्यर्थः ।

कलाओंमें प्रवीण यह दूत भी अनुक्रमसे जाकर द्वारिकापुरी पहुँचा। उसके रास्तेकी थकान ठंडी एवं बगीचोंकी सुगन्धित वायुने दूर कर दिया ॥१२१॥ विस्मृत दृष्टि वाला वह दूत—जिसे नगरकी नारियाँ देख रही थीं उस बड़े-बड़े महलोंवाली नगरीमें ठीक वैसे ही प्रविष्ट हुआ जैसे कि एक पुण्यात्मा ध्यानमें प्रवेश करता है ॥१२२॥ राजभवनमें पहुँचकर उस दूतने अपने आनेकी सूचना द्वारपाल द्वारा भेज दी और अनेक प्रकारकी वेशभूषा धारण किये हुए राजाओंसे भरी राजसभामें प्रविष्ट हुआ ॥१२३॥ अपने लिए बतलाये गये आसन पर बैठकर थोड़ी देर बाद उसने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया कि—मगधेश्वर जरासन्ध ने आप लोगोंके लिए एक हितकी बात कहला भेजी है ॥१२४॥ वह यह कि जिसके भयसे आप लोग समुद्रके इस कष्टप्रद दुर्गमें आकर रह रहे हैं, उसने तो आपलोगोंका एक भी अपकार नहीं किया है ॥१२५॥ यद्यपि आपलोगोंने ही उसके जामाता तथा भाई आदिको मारकर उसपर ही एक प्रकारसे चढ़ाई की है फिर भी वह आपलोगोंके गुणोंको जानता है, इसलिए आपलोग उसे प्रणाम मात्रसे प्रसन्न कर सकते है। वह राजा आप लोगोंके प्रणामको न टालेगा क्योंकि सज्जन लोग अपकार करनेवालोंपर प्रणाममात्रसे ही प्रसन्न हो जाते हैं ॥१२६-१२७॥ दुर्गमें रहनेके कारण यदि आपलोग, उसके सामने झुकना नहीं चाहते तो अपनी भुजाओंपर गर्व करनेवाला वह राजा दूसरे घमण्डियोंको कैसे सह सकता है ॥१२८॥ इसलिए यदि आपलोग जरासन्धसे अपने वंशका विनाश नहीं चाहते तो शीघ्र ही जाकर उसे प्रणामकर प्रसन्न कर लीजिए ॥१२९॥

दूतके इन वचनोंको सुनकर उन सबने अपनी भौंहे चढ़ा लीं और वहाँ बहुत समयसे बसे हुए वे कृष्ण आदि यादव क्रोध-

आयात्वसौ निनङ्क्षुः सङ्ग्रामोत्कण्ठिता वयं सुचिरात् ।
इति तैस्तदा विसृष्टो गत्वा स्वनृपाय तथाऽवोचत् ॥१३१॥

प्रोत्थाय सहोत्पातैः स्वदूतवचनेन मागधः क्रुद्धः ।
तस्थौ च कुरुक्षेत्रे भूचालस्पर्धया चम्वा ॥१३२॥

यदुसर्ववाहिनीभिर्विधूतधूलीविलक्षिताऽगमनः ।
अभ्येत्य तदा तूर्णं तत्रैवाऽधोक्षजोऽप्यस्थात् ॥१३३॥

सन्नह्य गरुडचक्रव्यूहविभक्ते ततः समागाताम् ।
शरवर्षपातपरुषे यदुमगधेन्द्रध्वजि[illegible] ते ॥१३४॥

तत्रासिभिः प्रदीप्तैः क्रोधोद्रेकैरिवान्तनिःकृष्टैः ।
आकृष्टधनुर्मुक्तैरमोघलक्ष्यैः शरैश्चापि ॥१३५॥

गुरुभिर्विधूतमुक्तैः परिघैः परमर्ममर्दिभिश्चोग्रैः ।
प्रहताः प्राणवियोगं प्रापुर्वीराः परस्परतः ॥१३६॥

रिपुभिर्निशातकुन्तैस्तुरङ्गमारोहिभिर्घनं नुन्नाः ।
द्विपरोहिणो निपेतुर्गतासवो वाजिनश्चान्ये ॥१३७॥

नाराचवर्षवृष्ट्या मदप्रसेकविवासितकपोलाः ।
अचलव्रतमनुतस्थुर्भूयांसो वारणा व्यसवः ॥१३८॥

चक्रैर्निकृत्तचक्राः शत्रुशरापातनिहतयन्तृहयाः ।
परिघप्रघातभग्नाः रथाश्च नैके व्यशीर्यन्त ॥१३९॥

एवं प्रवर्तमाने महत्यृधे विशिखसंवृताऽकाशे ।

से लाल नेत्र कर इस प्रकार गर्जना करने लगे कि 'आवे, वह अपने विनाशको चाहनेवाला। हमलोग तो बहुत समयसे युद्धके लिए उत्कण्ठित ही हैं।' इस प्रकार उनसे विदा लेकर उस दूतने, अपने राजाके पास जाकर सब समाचार कह दिये। तब अपने दूतसे यह सब सुन मगधराज जरासन्ध बहुत क्रुद्ध हुआ और अनेक उत्पात होनेपर भी तैयारी कर भूकम्प पैदा करनेवाली सेनाके साथ कुरुक्षेत्रके मैदानमे आ गया ॥१३०-१३२॥ कृष्ण भी यादवोंकी समस्त सेनाओसे धूलिको उड़ाते तथा अपने आगमनको बतलाते हुए, वहाँ शीघ्र ही आकर जम गये ॥१३३॥

तब यादवों और मगधराजकी सेनाएँ तैयारीके साथ गरुड-व्यूह और चक्रव्यूहकी रचना कर युद्ध क्षेत्रमें आ गईं और बाणोंकी वर्षा करने लगीं ॥१३४॥ वहाँ क्रोधसे निकले हुए भीतरी पापके समान चमकती तलवारोंसे तथा धनुषको खींचकर छोड़े गये और अचूक निशानेवाले बाणोंसे, और फेंककर प्रयोग किये गये, दूसरोंके हृदयको नष्ट करनेवाले तीक्ष्ण बड़े-बड़े भालों (गुप्तियों) से, आपसमे लड़ते हुए वीर लोग मारे जाने लगे। घुड़सवार शत्रुओंने तीक्ष्ण भालोंसे मारकर हाथियोंके सवारोंको मार डाला तथा बहुतसे घुड़सवार भी प्राणहीन हो गिर गये ॥१३५-१३७॥ वहाँ बाणोंकी खूब वृष्टि होनेसे, मद जलको कपोलोंसे बहाते हुए बहुतसे हाथी प्राणरहित हो निश्चल भावसे पड़े रहे ॥१३८॥ बहुतसे रथ गदाकी मारसे नष्ट हो गये थे, दूसरे रथोंके चक्रोंसे फँसकर उनके चक्र नष्ट हो गये। तथा शत्रुके बाणोंसे उनके सारथी एवं घोड़े मार डाले गये ॥१३९॥ इस प्रकार जब कि महायुद्ध चल रहा था, और बाणोंसे आकाश ढँक रहा था तथा युद्ध करके अपने पुत्र, योद्धा और राजा लोग मर रहे थे, तब अचूक अस्त्र चलानेवाला वह जरासन्ध मत्त हाथीके

मत्तेभमस्तकस्थो व्यर्थास्त्रोऽभ्येत्य विज्वलच्चक्रम् ।
व्यमुचद्विवृद्धमन्युर्मगधेन्द्रो माधवायैव ॥१४१॥
सह भगवतैव सहसा प्रदक्षिणीकृत्य केशवं तदपि ।
मागधपुण्यक्षयतो दक्षिणहस्ते च सन्तस्थे ॥१४२॥
चक्रेण तेन शत्रोः शिरोधरं च युधि चकर्त चक्रधरः ।
जनताऽनन्दनिनादैः सहास्य देह्यु[1]त्पपातोर्ध्वम् ॥१४३॥
जातेऽथ कृष्णविजये यदवः सर्वे समेत्य चिक्रीडुः ।
आनन्दितास्तु यस्मिन्नानन्दपुरं बभूवाऽत्र ॥१४४॥
कृत्वाऽथ चक्रमहिमामाश्राम्य च मागधादिकान्देवान् ।
स्वपुरीं विवेश विष्णुर्विजित्य देशान्द्विचतुर[2]ब्दैः ॥१४५॥
पुनरर्द्धचक्रितायामभिषिक्तो देवमानवेन्द्रैः ।
षोडशसहस्रसङ्ख्याभिः सह देवीभिरभिरेमे ॥१४६॥
शार्ङ्गं धनुश्च दिव्यं सुदर्शनं चक्रमरिदुराधर्षम् ।
शक्तिश्चाऽमोघमुखी तथैव सौनन्दकं खड्गम् ॥१४७॥
शंखश्च पाञ्चजन्यो रिपुभयदा कौमुदीगदा चोग्रा ।
कौस्तुभमणिना रत्नान्यमूनि सप्ताभवञ्छौरेः ॥१४८॥
अपराजितहलमभूत्सगदं रत्नावतंसिका माला ।
मुसलं चामोघमुखं रत्नान्येतानि लाङ्गलिनः ॥१४९॥
सम्पन्नपूर्णविभवो विख्यातपराक्रमः परमलक्ष्मीः ।
अन्यैरलङ्घिताज्ञ परिपूर्णमनोरथोत्साहः ॥१५०॥
प्रणतैः प्रसेव्यमानः परिषदि रेमे जनार्दनः सततम् ।
षोडशसहस्रसङ्ख्यैर्नृपैस्तदर्धैश्च गणदेवैः ॥१५१॥

इत्यरिष्टनेमिचरिते पुराणसङ्ग्रहे आर्याबद्धे विष्णुविजयो नाम तृतीयः सर्गः समाप्तः ॥३॥

---

१ देही = देहवान् = आत्मा इत्यर्थः । २ अष्टवर्षैरित्यर्थः

मस्तक पर बैठकर युद्धक्षेत्रमें आया और कृष्ण पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर जलते हुए चक्रको चला दिया ॥१४०-१४१॥ वह चक्र भी सहसा भगवान् नेमिनाथके साथ कृष्णकी प्रदक्षिणा कर जरासन्धके पुण्य क्षीण हो जानेसे, कृष्णके दाहिने हाथमें आकर ठहर गया ॥१४२॥ तब युद्धक्षेत्रमें ही चक्रधारी कृष्णने उस चक्रसे शत्रुकी गर्दन काट ली और उसके प्राण जनताकी आनन्द-ध्वनिके साथ-साथ ऊपर उड़ गये ॥१४३॥ कृष्णकी विजय होनेपर सभी यदु लोग मिलकर क्रीड़ा करने लगे और जहाँ उन लोगोंने आनन्द मनाया था, उस स्थानका नाम आनन्द-पुर हो गया ॥१४४॥

तदनन्तर कृष्णने चक्रकी पूजा की, और मागध आदि देवोंको वशमें कर तथा आठ वर्षों तक देशोंको जीत, तत्पश्चात् लौटकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥१४५॥ फिर देवेन्द्रों और नरेन्द्रोंने मिलकर उनका अर्धचक्रवर्ती पदपर अभिषेक किया। तत्पश्चात् वे सोलह हजार रानियोंके साथ सुखसे रहने लगे ॥१४६॥ उनके पास दिव्य शार्ङ्ग नामका धनुष था, शत्रुओंको डरानेवाला सुदर्शन चक्र था, न चूकनेवाली शक्ति थी, सौनन्दक नामकी तलवार थी, एवं पाञ्चजन्य नामका शंख, शत्रुओंको भय देनेवाली कौमोदकी नामकी गदा तथा कौस्तुभ मणिको मिलाकर सात रत्न थे। बलरामके भी, अपराजित नामका हल, गदा, रत्नावतंसिका माला, तथा न चूकने-वाला मूसल, ये चार रत्न थे ॥१४७-१४९॥ वे कृष्ण सोलह हजार विनीत राजाओंसे तथा आठ हजार गणदेवोंसे सतत सेवित हो राज्य-सभाके बीच अच्छी तरह रहने लगे। वे पूर्ण वैभवसे सम्पन्न थे, उनका पराक्रम विख्यात था, उत्तम लक्ष्मी थी, सारे मनोरथ और उत्साह पूरे हो गये थे तथा उनकी आज्ञा सबको शिरोधार्य थी ॥१५०-१५१॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह के आर्याबद्ध अरिष्टनेमिचरितमें
विष्णुविजय नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

---

## चतुर्थः सर्गः

भगवानापूर्णवया· प्रपूर्णबिम्बः शशीव संराजन् ।
सम्पूर्णमदावस्थः करीव वाऽनन्यतुल्यवपुः ॥१॥

अन्येद्युरलङ्कारैः स्फुरन्मयूखैर्विभूषितो दिव्यैः ।
व्यालोलतडिन्मालाविराजितो वारिवाह इव ॥२॥

अभिगम्य कुसुमचित्रां सम्भ्रान्तैश्चलितहारवक्षोभिः ।
प्रत्युत्थित. सलीलं बद्धाञ्जलिमौलिभिः सख्यैः ॥३॥

सिंहासने न्यषीदद्धरिणा सार्द्धं सभागृहं सहसा ।
सम्पूरयन् स्वभासा भासा विज्ञापयन् राज्ञाम् ॥४॥

तत्रेश्वरो मुहूर्त्तं मुमुदे शार्ङ्गायुधेन सङ्गूढ· ।
स्थानपतितैर्विचित्रैः कथाविशेषै. सदस्यानाम् ॥५॥ पञ्चकम् ।

बलवतामेकगणनाप्रस्तावे तत्र केचिदवनीशाः ।
प्रशशंसुरुदितसत्त्वं पार्थमवन्ध्यास्त्रमस्त्रविदः ॥६॥

अपरे युधिष्ठिरं वै वृकोदरं केचिदुद्धवप्रभृतीन् ।
हलिनोऽलं बलवतां पुरःसरं केचिदस्तौषु· ॥७॥

अपरे तदोचुरेवं कोऽन्यो बलवान् सतीह गोविन्दे ।
कौमार एव योऽयं धृतवान् धरणीधरं तरसा ॥८॥

यं सर्वक्षितिपालाः स्ववीर्यविख्यापने ह्यसंदिग्धाः ।
स्थानान्मनागपि पुरा नालं ननु चलयितुं सबला· ॥९॥

तस्मादवार्यवीर्यो क्षितिपो कोऽन्यो भवेदिह च भूमौ ।
नारायणान्नरपतेर्दिवीव देवेन्द्रसमभासः ॥१०॥ त्रिकम् ।

## चतुर्थ सर्ग

भगवान् नेमिनाथ पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान पूर्ण युवावस्था-से तथा अनुपम शरीरसे शोभित हो रहे थे मानो पूर्णमदसे भरा हाथी ही हो। एक दिन वे भगवान् जैसे चञ्चल विद्युन्मालासे मेघ अच्छा लगता है उसी तरह कान्तियुक्त दिव्य अलंकारोंसे विभूषित हो कुसुमचित्रा नामकी सभामे आये। वहाँ चञ्चल हारसे युक्त वक्षःस्थलवाले सभी कुलीन मित्रोंने हाथ जोड़ मुकुट झुकाकर प्रसन्नतासे स्वागत किया ॥१-३॥ वे सहसा अपनी कान्ति से सभागृहको पूरित करते हुए तथा राजाओंको सूचित करते हुए कृष्णके साथ सिंहासनपर बैठ गये ॥४॥ वहाँ वे भगवान् कृष्णसे सटकर बैठ उस समय सभासदोंसे कही गई विचित्र प्रकारकी कथाओंको थोड़ी देर सुनकर प्रसन्न हुए ॥५॥

वहाँ जब बलवानोंमें कौन अद्वितीय है इस बातका प्रस्ताव आया तो कुछ शस्त्रज्ञ राजाओंने, उन्नत बलवाले तथा अचूक अस्त्र चलनेवाले अर्जुनकी प्रशंसा की ॥६॥ कुछ लोगोंने युधि-ष्ठिरकी, कुछने भीमकी तथा कुछने उद्धव आदिकी तथा कुछने बलरामको ही बलवानोमें अग्रणी कहकर प्रशंसा की ॥७॥ तद-नन्तर कुछने इस प्रकार कहा कि कृष्णके रहते हुए और कौन बलवान् है जिसने कुमारकालमें ही जल्दीसे पर्वत उठा लिया हो ॥८॥ इसके पहले वे सारे राजा जिन्हें अपने अपनी ताक़तपर पूरा भरोसा था, अपनी सेनासहित भी, उस पर्वतको स्थानसे जरा भी न हिला सके थे। इसलिए इन्द्रके समान कान्तिवाले, नारायण, कृष्णसे बढ़कर कौन महापराक्रमी राजा इस पृथिवीपर होगा ॥९-१०॥

अभिहितमथ च सभायां हलिना सलीलमेवं समुद्दिश्य ।
नेमिस्वाम्यधिकबलो न नाम भुवनत्रयेऽस्तीति ॥११॥

तच्छ्रुत्वा हरिरभणीद्भगवन्तं सस्मितं समभिवीक्ष्य ।
युष्मद्बलप्रवेकं द्रक्ष्यामोऽत्र मल्लयुद्धेन ॥१२॥ युग्मम् ।

सान्तर्हासं भगवानवोचदम्भोदनादधीरगिरा ।
विष्णुं विलोक्य विजयी सलीलमीषत्प्रचलिताभ्रूः ॥१३॥

एतावतैव भवतो विभोत्स्यते बाहुवीर्यभूय[१]स्त्वम् ।
युद्धेन किम्ममेदं पादाङ्गुष्ठं प्रचालयेति ॥१४॥

सामर्षमतः शार्ङ्गी स्वसर्वशक्त्याऽपि भगवतोऽङ्गुष्ठम् ।
न शशाक तदोद्धर्तुं ततश्च विभयाम्बभूव विभोः ॥१५॥

तस्मिन् क्षणे सुरेन्द्रः समेत्य पादार्चनं प्रवृत्त्येशः ।
क्षितिपेन्द्रमाप्रहृत्य च जगाम नाकं सपरिवारः ॥१६॥

पुनरन्यदा जिनेन्द्रो वसन्तकाले सुरम्यमुद्यानम् ।
विज्ञापितः प्रियाभिः शौरेः कौतूहलादगमत् ॥१७॥

प्रविकसितचूतसुरभिः प्रवाहितान्वियनागतेन च शनैः ।
उद्यानविलोललतानृत्याचार्येण दक्षिणतः ॥१८॥

किसलयविभेदनीकरशिशिरेण मम शरीररम्येण ।
तस्मिन् दृष्टो भगवान् स्मराग्निविध्मापिना मरुता ॥१९॥युग्मम् ।

देव्यः काश्चन नार्यं पुष्पकुसुमावलीनिरर्पितश्चैः ।
सालतमालविटपकैः बालव्यजनैरिव विचिन्तु ॥२०॥

धम्मेल्लसंरचनां सुन्दराम्रमञ्जरीविरचिन्वन्ती ।
अपराश्च गनश्रयां अशोकतरो गोकर्णानन्द ॥२१॥

---

१ प्रानुर्पमिन्दर्य

तब बलरामने सभामें हॅसकर यों ही कह दिया कि नेमि-भगवान्‌से अधिक बलवान् इस संसारमें और कोई नही है ॥११॥ यह सुनकर कृष्णने हॅसकर भगवान्‌की ओर देखा और कहा कि हमलोग आपकी ताकत मल्लयुद्धमे देखना चाहते हैं ॥१२॥ तब वे विजयी भगवान् मनमे हॅसते हुए मेघगर्जनके समान गंभीर वाणीसे पृथिवीको थोड़ा कॅपाते हुए, विनोदपूर्वक कृष्णको देख बोले कि—॥१३॥ मल्लयुद्ध करनेसे क्या ! आपके बाहुबलका पराक्रम इतनेसे ही मालूम हो जायगा कि आप मेरे इस पैरके अंगूठेको ही थोड़ा चलाइये। इसपर कृष्ण क्रुद्ध हो गये और अपनी सारी शक्तिसे भी अंगूठेको यहॉ-वहॉ न चला सके। तद-नन्तर कृष्णको भगवान्‌से कुछ डर हो गया ॥१४-१५॥ तब उसी समय इन्द्रने आकर भगवान्‌के चरणोकी पूजा की और राजाओ-को डांटकर देवो सहित स्वर्ग चला गया ॥१६॥

फिर एक समय वसन्तके महीनेमें वे भगवान् कृष्णकी रानियोकी प्रेरणासे कुतूहलवश एक सुन्दर बगीचेमें गये ॥१७॥ भगवान्‌ने उस बगीचेमे देखा कि दक्षिण दिशासे धीरे-धीरे आने-वाले, कलियोको विकसित करनेवाले एवं जलकणोसे शीतल तथा मन और शरीरको अच्छे लगनेवाले तथा कामाग्निको प्रज्व-लित करनेवाले नृत्याचार्य वायुने विकसित आम्रकी मौरोंकी सुगन्धि फैला रखो है और उद्यानकी लताओको चंचल कर दिया है ॥१८-१९॥ वहॉ कुछ रानियॉ चमरके बीजनेके समान ही साल और तमाल वृक्षोंकी डालियोसे—जिनमे फूले हुए फूलोंपर ध्वनि करते हुए भौंरे वैठे हैं—भगवान्‌को हवा करने लगीं ॥२०॥ किसी रानीने आमकी मौरोंको मिलाकर अशोकवृक्षके लाल फूलोंके गुच्छेसे उन प्रसन्नचित्त ( शोकहीन ) भगवान्‌के कर्णभूषणकी रचना अच्छी तरह कर दी ॥२१॥ किसी रानीने भगवान्‌के सिर-

चिक्षेप कर्णिकारस्तबकं नवमल्लिकाकुसुमविद्धम् ।
मौलिमिव शिरसि काचिन्मुक्ताफलशोभितं भर्तुः ॥२२॥

काचिच्चकार कुरबककुसुमान्यात्मवरपाणिमुक्तानि ।
भगवच्छिरोरुहालिप्रतिगृह्याऽत्यन्तसुमगानि ॥२३॥

गुणवन्त्यमूनि भर्तुः स्थानभ्रष्टान्यपीति सुजना इव ।
काचिदतिमु[१]क्तकुसुमान्युपनीयापयन्नाथम् ॥२४॥

एवं वसन्तनृपतिः स्वयमिव साक्षात्स्वदृष्टिसञ्चारः ।
पश्यन्नुपवनशोभां दामोदरवामवनिताभिः ॥२५॥

प्रविवृत्य वनोद्देशं तिलाखिलां विलोक्य पुष्करिणीम् ।
तत्रेश्वरोऽतिरम्यां चिक्रीडिषुभिर्व्यगाहिष्ट ॥२६॥ युग्मम् ।

नानाक्रीडनयन्त्रैः करिमकराश्वादिरुचिररूपधरैः ।
सोपान्तखचितभास्वन्मणिप्ररोहोत्थसुरचा[२]पैः ॥२७॥

व्यूढाभिर्विविधरूपप्रणालिकोद्धान्तसलिलधाराभिः ।
अन्योऽन्यमपाम्रत्यो देव्योऽदीव्यंस्ततो बहुशः ॥२८॥ युग्मम् ॥

जलदेवनावसाने जिनेन साज्ञापिता कटाक्षेण ।
निवसिततन्त्र[३]कवसनेनार्द्राम्बरपीलनायात्र ॥२९॥

जाम्बवती च बभाषे तमेवमाकुञ्चितभ्रु वीक्ष्येशम् ।
कृत्रिमकोपज्वलिता लीलापाङ्गेन सविलासम् ॥३०॥

यो भोगिभोगरत्नप्रभापरिष्वक्तमौलिमणितेजाः ।
अपरेण दुरारोहां शय्यामारुह्य हरिवाहाम् ॥३१॥

पूरयति पाञ्चजन्यं सकलजगद्व्यापि मन्द्रनिर्घोषम् ।
आकर्षति दिव्यचापं शार्ङ्गमशेषाऽवनिनाथः ॥३२॥

---

१ माधवीलता इत्यर्थः । २ इन्द्रधनुर्भिः । ३ नूतनवस्त्रेण इत्यर्थः ।

पर, मोतियोंसे शोभित मुकुटके समान ही, नवीन मल्लिकाके फूलसे युक्त कनेरके गुच्छेको रख दिया ॥२२॥ किसीने अत्यन्त सुन्दर कुरबकके फूलोंको लेकर एवं अपने सुन्दर हाथोंसे रखकर भगवान्‌के बालोंकी शोभा कर दी ॥२३॥ जैसे अपने स्वामीसे त्यक्त गुणवान् व्यक्तियोंको सज्जन लोग आश्रय देते हैं उसी तरह अपने स्वामी—माधवीलतासे—स्थानभ्रष्ट मोंगरा (माधवी) के सुन्दर फूलोंको धागेमे पिरोकर तथा भगवान्‌को भेंट कर कोई रानी लजाने लगी ॥२४॥ इस प्रकार कृष्णकी रानियोंके साथ उपवनकी शोभाको देखते हुए, वे भगवान् ऐसे मालूम पड़ते थे मानो स्वयं वसन्त राजा साक्षात् अपनी दृष्टि फैला रहा हो। तदनन्तर उस उद्यानमें विहार कर भगवान् नेमिनाथने वहाँ तिलाखिला नामकी एक सुन्दर बावड़ी देखी और क्रीड़ा करनेकी इच्छुक रानियोंके साथ उसमे प्रवेश किया ॥२५-२६॥ वहाँ वे रानियाँ, हाथी, मगर, घोड़े आदि मनोहर रूपधारी नाना प्रकारके क्रीड़ा-यन्त्रोंसे, तथा किनारेमे लगे हुए चमकते हुए विविध मणियोंकी किरणोंसे उत्पन्न (कल्पित) इन्द्रधनुषसे विभक्त अतएव नाना रंगकी नालियोंसे निकलती हुई जलधारासे आपसमें ताड़ित करती हुई, अनेक प्रकारसे खेलने लगीं ॥२७-२८॥

जलक्रीड़ाके बाद भगवान् नेमिनाथने नये कपड़े पहनकर अपने गीले कपड़े निचोड़नेके लिए आंखोंके इशारेसे कृष्णकी रानी जाम्बवतीसे कहा। तब बनावटी क्रोधसे लाल हो वह रानी, चंचल कटाक्षोंसे भगवान्‌को देखकर टेढ़ी भौंह कर हाव-भावके साथ बोली---कि मैंने उस राजा कृष्णकी भी धोती इस प्रकार कभी नहीं धोई तब क्या आप जैसोंकी धोतीको निचोड़ूँगी। वह कृष्ण सम्पूर्ण पृथिवीका राजा है तथा सर्पमणिकी कान्तिसे व्याप्त मुकुटके मणियोंसे तेजस्वी है। उसने दुःसाध्य सिंहवाहिनी

तस्यापि नाहमखिलत्रिलोकविख्यातविमलसत्कीर्तेः ।
शौरेः कदाचिदपि वा निवसनमीदृक्षमास्पृक्षम् ॥३३॥

अद्य किल नाम भवतः कस्यापि निपीलयामि जलसारिम् ।
इति तच्छ्रुत्वा देव्यो मामैवं नाथमित्यूचुः ॥३४॥

एतावदेव भर्त्तुर्ननु माहात्म्यं तवेति नाथोऽपि ।
विनिवृत्य राजभवनं विशेषसामर्षशीघ्रगतिः ॥३५॥

आरुह्य भोगिशय्यामारोपयदत्र वैष्णवं चापम् ।
दध्मे च महाशंखं प्रक्षुभिताम्भोनिधिध्वानम् ॥३६॥

स्तम्भान्वभञ्जुरुच्चैर्मतङ्गजास्तद्रवेण चोद्दसाः ।
सन्चेलुः सौधानां तदा समुत्तुङ्गाश्रृङ्गाणि ॥३७॥

सम्भ्रान्तजनसमूहाः किमित्यसम्भावितोग्रघूर्णरवा ।
क्षुभिता बभूव नगरी लोकप्रलये जनितशङ्का ॥३८॥

विष्णोः सभा च सहसा संचुक्षुभे कुसुमचित्रास्तिमिता ।
केनापि मन्यमाना जलनिधिवेलावलयभङ्गम् ॥३९॥

आघ्राय पान्चजन्यध्वनिं तदाऽभ्येत्य केशवः शीघ्रम् ।
दृष्ट्वा भुजङ्गशय्यां विसिष्मे तमलं प्रकुर्वाणम् ॥४०॥

उपलभ्य वृष्णिधीराः कृच्छ्राच्छान्तं युधेन निर्वर्त्यम् ।
तदमानुषं प्रहृष्टा ह्यवज्ञया कर्मकृतमीशा ॥४१॥

देवी प्रचोदनादिदमकरोन्नर्तेति विदितसम्बन्धाः ।
सर्वेऽपि मन्त्रयित्वा चक्रायुधकं तदा सम्यक् ॥४२॥

वरपरिणयाय भर्त्तुः प्रयेतिरे तनययोग्रसेनस्य ।
बध्वा तु राजिमत्या त्रैलोक्याऽनन्यसुन्दर्या ॥४३॥

शय्यापर चढ़कर ऐसा पाञ्चजन्य शंख बजाया, जिसकी गम्भीर-ध्वनि सकल संसारमें व्याप्त हो गई, तथा शार्ग नामके दिव्य-धनुषको जिसने चढ़ाया है एवं उसकी कीर्ति सम्पूर्ण लोकमे फैल रही है। उसके इन वचनोंको सुनकर दूसरी रानियोने उससे कहा कि इस प्रकारकी वात भगवान्से मत कहो ॥२९-३४॥

तब भगवान्ने यह कहा कि अच्छा तुम्हारे पतिकी इतनी भर ही बड़ाई है। और विशेष क्रोधके साथ शीघ्रतासे अपने महलमें लौट आये ॥३५॥ और उन्होने नागशय्यापर चढ़कर कृष्णके धनुषको चढ़ा दिया, तथा क्षुभित समुद्रकी गर्जनाके समान महाशंख बजाया। उस शंखकी ध्वनिसे चौंके हुए हाथियोंने महलके बड़े-वड़े खम्भे तोड़ दिये तथा अनेको भवनोंके ऊँचे-ऊँचे शिखर हिलने लगे। नगरवासी जन चौंककर 'यह क्या? यह क्या?' इस तरह खूब चिल्लाते हुए भागने लगे और समस्त नगरी लोक-प्रलयकी आशंकासे घबड़ा गई ॥३६-३८॥ कृष्णकी सभा कुसुम-चित्रा भी एकदम चौंककर घबड़ा गई और यह मानने लगी कि किसीने समुद्रके बाँधको ही तोड़ दिया है ॥३९॥

तब कृष्णने पाञ्चजन्य शंखकी ध्वनिको पहचाना और वहाँ शीघ्र आकर भगवान्को नागशय्यापरं सुशोभित होते देख बड़ा आश्चर्य किया। तब यादवोंने यह जानकर कि युद्धसे निवटने लायक, पर किसी तरह शान्त हुए, इस असानुषीय कर्मको भग-वान्ने तिरस्कार-बुद्धिसे किया है, बड़ी प्रसन्नता प्रकट की ॥४०-४१॥ उन लोगोने मालूम किया कि जाम्बवतीकी प्रेरणासे ही भगवान्ने ऐसा किया है और कृष्णकी सलाहसे भगवान्का विवाह राजा उग्रसेनकी तीन लोकमे अतिसुन्दरी पुत्री राजिमतीके साथ करनेके लिए प्रयत्न करने लगे ॥४२-४३॥

एक दिन वे अनुपम भगवान् कुवेरके द्वारा लाये गये आभू-

अपरेद्युरुदितकेतुः प्रवल्गदुच्चैस्तुरङ्गसंयुक्तम् ।
स्थानरचितानि भास्वन्मणिप्रभोद्द्योतितवपुष्कम् ॥४४॥

आदित्यरथप्रतिमं रथमप्रतिमो जिनः समारुह्य ।
यक्षपतिनोपनीतैर्विभूषितो भूषणैः सुतराम् ॥४५॥

निर्गत्य सानुयात्रं राजन्यैरनुगतो रुचिरवेषैः ।
नगरवधूजननेत्रभ्रमरावलिपीयमानवपुः ॥४६॥ त्रिकम् ।

दृष्ट्वा मृगानिरुद्धांस्त्रासादेशप्रकम्पितशरीरान् ।
प्रोद्विग्नदीननयनान्नानाजातीयकाननीशः ॥४७॥

त्रिज्ञानधरो ज्ञात्वा कारणमुत्पन्नधर्मसम्बोधिः ।
हलधरचक्रधरादीन् प्रकाशनार्थं स्वजनवर्गान् ॥४८॥

ससपृच्छदानुगंस्यात्स्यन्दनमास्थाप्य मधुरनिर्घोषम् ।
केन त्वमी अनाथाः वन्याः परिरोधिताः किमिति ॥४९॥ त्रिकम् ।

विनयाद्विलक्षवदनः सारथिरगदीद्भवद्विवाहार्थम् ।
आनीता भर्तुरिमे शासनतो च वासुदेवस्य ॥५०॥

श्रुतसूतोक्तिरीशः प्रादुरभूत्सर्वभोगनिर्वेदः ।
विषयाणां चिन्तयतस्तत्रैव परिपाककाटुक्यम् ॥५१॥

प्रोचे च कुन्दगौरैस्तत्समयाऽभ्यागतैः कृताञ्जलिभिः ।
लोकान्तिकैस्त्रिलोकेट् प्रणयेश्वर धर्मतीर्थमिति ॥५२॥

एवं कृत्वाऽवलोकादागतनिर्वेदधीर्विवेश पुरम् ।
परिदूयते हि हृदयं परदुःखसंस्पर्शक्षणेन सताम् ॥५३॥
तत्समये देवेन्द्राः स्वासनसंकम्पनात्परिज्ञाय ।
आगत्य विविधवाहाः क्षीराब्धिपयोभिरस्याशु ॥५४॥

संस्नाप्य पयोऽम्बुनिधेरम्भोभिर्दिव्यमाल्यपरिधानैः ।
वरकङ्कणैश्च रुचिरैर्भगवन्तं भूषयामासुः ॥५५॥

षणोको पहिन हिनहिनाते हुए ऊँचे घोड़ोसे युक्त तथा स्थान-स्थानपर लगाये गये चमकीले मणियोकी प्रभासे जगमग होते हुए सूर्यरथके समान रथमे चढ़कर तथा सुन्दर वेशधारी राजकुमारोके साथ व अपने परिचारक गणोको ले बाहर निकले। उनके शरीरकी शोभा देख नगरकी नारियोके नेत्र प्रसन्न हो रहे थे ॥४४-४६॥

रास्तेमें उनने भयके आवेशसे कम्पते हुए, घबड़ाहटसे कातर दृष्टिवाले, अनेक जातिके मृग-पशुओको देखा॥४७॥ और त्रिज्ञान-धारी उन भगवान्को स्वयं ही उस सबका कारण मालूम होनेसे वैराग्य हो गया। फिर इस बातको बलराम, कृष्ण आदि अपने बन्धुवर्गमे प्रकट करनेके लिए, अपने गंभीर ध्वनि वाले रथको रोककर पूछने लगे कि किसने निर्दय भावसे इस अनाथ जंगली पशुओको रोक रखा और किस लिए रोका है।॥४८-४९॥ तब विनम्रतासे विनीत वचन बोलने वाले सारथिने कहा कि आपके विवाहके लिए ही कृष्णकी आज्ञासे ये पशु यहाँ लाये गये हैं ॥५०॥

सारथिके इन वचनोको सुनकर भगवान् नेमिनाथको उसी समय इन्द्रिय-विषयोके कटु फलको सोचते हुए समस्त भोगोंसे वैराग्य हो गया ॥५१॥ उसी समय कुमुदके समान श्वेत वर्ण वाले लौकान्तिक देव भगवान्के पास हाथ जोड़कर आये और उन्होने प्रार्थना की कि हे त्रिलोकेश भगवन्, आप धर्मतीर्थका प्रवर्तन कीजिये ॥५२॥ उस प्रकार मृग-पशुओको देख, विरक्त-चित्त हो भगवान् नगरमें आये। सच है कि सज्जनोका हृदय दूसरोंके दुख देखनेसे दुखी होता है ॥५३।

उस समय देवेन्द्रोंने अपने आसन कम्पन होनेसे भगवान्की दीक्षा लेनेकी इच्छा जानी और नाना प्रकारकी सवारियोमे चढ़कर शीघ्र ही वहाँ आये ॥५४॥ और उन्होने क्षीरसागरसे जल लाकर भगवान्का अभिषेक करा, उन्हे दिव्य माला, वस्त्र, मनोहर

आपृष्टसकलबन्धुं पुनरिन्द्राः भुवनबन्धुमानिन्युः ।
ऊर्ध्वोर्जयन्तमचिरादुत्तरकुर्वाख्यशिबिकास्थम् ॥५६॥

पञ्चग्राहं भगवान् लुञ्चित्वा तत्र मूर्धजान् रुचिरान् ।
राजसहस्रेण समं जगृहे दैगम्बरीं दीक्षाम् ॥५७॥

रत्नमयपटलिकायां प्रतिगृह्य शिरोरुहांस्तदेशस्य ।
निदधाति स्म बिडौजा. क्षीराम्भोधौ सुरभिगान्धीन् ॥५८॥

ज्ञानचतुष्टययुक्तो विमुक्तवाह्यान्तरोभयग्रन्थ. ।
पश्यन्मनांसि जगृहे सम्पूर्णो निर्घन इवेन्दुः ॥५९॥

श्रावणशुक्लचतुर्थ्यां पूर्वाह्णे षष्ठभक्तनियमेन ।
सम्यग्गृहीतदीक्षं प्रपूज्य देवाः प्रभुं प्रययुः ॥६०॥

भर्त्रे प्रदाय भक्त्या वरदत्त पारणां तु परमान्नम्[१] ।
प्रापद्वसुधाराद्यां सुरपूजां द्वारकापुर्याम् ॥६१॥

सप्ताऽष्टकेषु तपसा महता रात्रिन्दिवेषु यातेषु ।
आश्वयुजसितप्रतिपदि पूर्वाह्णे षष्ठभक्तेन ॥६२॥

क्षपकश्रेण्यारूढो निराकुलं शुक्लमीश्वरो ध्यायन् ।
दुरितारिमरणकरणैरपूर्वकरणादियोगास्त्रै. ॥६३॥

विनिहत्य मोहमखिलं ज्ञानदृगावरणविघ्नकरणं तु ।
लोकालोकविभासनमलब्ध वरकेवलज्ञानम् ॥६४॥

इन्द्रास्तदेत्य सर्वे स्वसर्वसेनाभिरादृताश्चक्रु ।
भगवत्क्रमारविन्दस्पर्शपवित्राणि मुकुटानि ॥६५॥

छत्रत्रयचमरद्वयसिंहासनकुसुमवर्षतूर्याणि ।
दिव्यरवोऽशोकतरुद्युतिवलय इतीश ऋद्धिरभूत् ॥६६॥

---

१. क्षीरान्नमित्यर्थः

आभूषण पहनाये ॥५५॥ फिर उन जगद्बन्धु भगवान्को–जिनने कि अपने समस्त परिवारसे दीक्षा लेनेकी आज्ञा ले ली थी–उत्तर-कुरु नामकी पालकीपर बैठाकर शीघ्र ही गिरनार पर्वतपर ले आये ॥५६॥ वहाँपर भगवान्ने पञ्चमुष्टिसे अपने केश लोंच कर हज़ार राजाओके साथ दिगम्बरी दीक्षा ले ली ॥५७॥ तब इन्द्रने रत्नोंकी पिटारीमें भगवान्के सुगन्धित बालोको रखकर क्षीरसागर-में क्षेप दिया ॥५८॥ चार ज्ञानसे संयुक्त तथा बाह्य और अन्तरङ्ग इन दोनो परिग्रहोसे रहित वे भगवान्, मेघरहित सम्पूर्ण चन्द्रमाके समान सभी लोगोका मन आकर्षित कर रहे थे ॥५९॥ श्रावण शुक्ल चतुर्थीके दिन पूर्वाह्णके समय भगवान्ने षष्ठोपवास कर दीक्षा ले ली। देवगण भी उनकी पूजा कर अपने-अपने स्थानको चले गये ॥६०॥

द्वारिकापुरीमे भगवान्को वरदत्त सेठने भक्तिवश पारणामें क्षीरान्न (खीर) दिया जिससे उसके घरमें देवोंने सम्मान स्वरूप धनवृष्टि आदि पञ्चाश्चर्य किये ॥६१॥ तदनन्तर दिन-रात महान् तप करते हुए ५६ दिन बीत जानेपर वे भगवान् आश्विन शुक्ल प्रतिपदाके दिन दोपहरके समय पष्ठोपवास करनेके बाद क्षपक श्रेणीमे आरूढ हुए और आकुलता रहित हो उन्होने शुक्ल-ध्यान का चिन्तवन किया तथा पापोको नष्ट करने वाले अपूर्व करण आदि योगास्त्रोसे सम्पूर्ण मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शना-वरणीय, अन्तराय कर्मोंको नाशकर लोक अलोक प्रकाशन करने-वाला श्रेष्ठ केवलज्ञान प्राप्त किया ॥६२–६४॥

तब सभी इन्द्रोंने अपनी समस्त सेनाके साथ आकर भगवान्-की पूजा की और उनके चरण-कमलोके स्पर्शसे अपने मुकुटोंको पवित्र किया ॥६५॥ उस समय भगवान्के तीन छत्र, दो चामर, एक सिहासन, पुष्पवृष्टि, दुन्दुभि, दिव्य ध्वनि, अशोकतरु और

विष्णुरपि वीतशत्रुं हस्ते कृततीर्थनाथलक्ष्मीकम् ।
प्रणिपत्य देवराजैः [१]सत्रा तत्पारिषद्योऽभूत् ॥६७॥
तस्मै त्रिलोकसदसे निर्वाणपथैकचारुनिश्रेणीम् ।
भगवांस्तदा बभाषे स सर्वसाधारणीं वाणीम् ॥६८॥
गणिनो बभूवुरेकादश वरदत्तादयो जिनेशस्य ।
संयमिनोऽपि च बहवो गृहधर्मरताश्रयाश्चासन् ॥६९॥
सार्द्धं बभूव भक्त्या षट्कसहस्रेण राजपुत्रीणाम् ।
राजीमतिः प्रव्रजिता जातार्यिकाऽग्रेसरी गणिनी ॥७०॥
सम्पच्चतुर्विकल्पाऽप्यभवत्प्रथमासने त्रिलोकगुरोः ।
भव्यान् बुबोधयिषया व्याजिहीषदथेश्वरो देशान् ॥७१॥
चक्रं पुरः प्रतस्थे क्षितय इव भास्करः सुधर्ममयम् ।
इन्द्रध्वजश्च सूच्चैरिन्द्रालयरोहिरुचिराग्रः ॥७२॥
छत्रत्रयं च शुशुभे स्वयं धृतं व्योम्नि भुवननाथस्य ।
दध्राते च तदानीं सुचामरे दिक्स्त्रियावभितः ॥७३॥
हेमारविन्दमूर्धसु पदविन्यासं गजेन्द्रगतिलीलः ।
कुर्वन्स्वपादविनतान् बहूंश्च निस्तारयन्व्यहरत् ॥७४॥
विनिवृत्याऽन्यतरेद्युः सुरासुरेन्द्रर्षिसर्वसमुदायैः ।
रैवतकाद्रावस्थात्प्रसेव्यमानो जिनो मुदितैः ॥७५॥
श्रुत्वा च जिनागमनं कृष्णः सकलसुतबन्धुजनसहितः ।
अभिगम्य समवशरणे न्यविक्षत भगवन्तमभिनम्य ॥७६॥

इत्यरिष्टनेमिनाथचरिते पुराणसंग्रहे आर्याबद्धे केवलज्ञानोत्पत्तिर्नाम चतुर्थः सर्गः समाप्तः ।

---

१ साकम्, सह इत्यर्थः ।

भामण्डल ये आठ प्रातिहार्य प्रकट हुए थे ॥६६॥ कृष्ण भी, शत्रु-रहित एवं तीर्थंकर विभूतिको प्राप्त उन भगवान्‌को नमस्कार कर इन्द्रके साथ ही समवशरणका सदस्य हो गया अर्थात् वहाॅ बैठ गया ॥६७॥ भगवान्‌ने उस तीन लोककी सभाके लिए—मोक्षमार्ग-की एक सुन्दर सीढ़ीके समान—सबको समझमें आने वाली वाणीसे उपदेश दिया ॥६८॥ उनके वरदत्त आदि ११ गणधर थे तथा बहुत-से मुनि और श्रावक थे ॥६९॥ राजीमतीने भी भक्तिपूर्वक छह हजार राजकन्याओंके साथ दीक्षा ले ली और आर्यिकाओंकी प्रमुख गणिनी हो गई ॥७०॥ त्रिलोकगुरु भगवान्‌को प्रथम ही चार प्रकारकी सम्पत्ति अर्थात अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्त वीर्य प्रकट हो गये थे फिर उनने भव्य प्राणियोंको उपदेश देनेकी इच्छासे नाना देशोंमें विहार किया ॥७१॥

उनके आगे आगे, दूसरे सूर्यके समान प्रकाशमान धर्मचक्र चल रहा था। ऊॅची एक इन्द्रध्वजा भी थी जिसका मनोहर ऊपरी हिस्सा गगनको छू रहा था। भगवान्‌के ऊपर आकाशमें अपने आप लटकतेके समान छत्रत्रय शोभित हो रहा था। तथा दो दिग्वधुओंने उनके दोनो ओर दो चामर धारण कर लिये थे ॥७२-७३॥ गजेन्द्रके समान गतिवाले वे भगवान् सुवर्ण-कमलोंपर पैर रखते हुए चल रहे थे तथा अपने चरणोंमें नत अनेक पुरुषोंको ससारसे तारते हुए विहार करने लगे ॥७४॥ फिर एक समय लौट कर देवेन्द्र असुरेन्द्र और ऋषि-समुदायोंसे सेव्यमान वे भगवान् गिरनार पर्वतपर ठहरे ॥७५॥ भगवान्‌के आगमन को सुन कर कृष्ण अपने सकल वन्धु-बान्धवोंके साथ समवशरणमें आये और भगवान्‌को नमस्कार कर बैठ गये ॥७६॥

इस प्रकार पुराणसारसग्रह के आर्या बद्ध अरिष्टनेमिनाथ चरितका केवलज्ञानोत्पति नामका चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ।

———

# पञ्चमः सर्गः

अथ देवकी जिनेन्द्रं प्रपच्छ भर्तरद्य मया त्रिरघहम् ।
मुनियुग्मं प्रविष्टं संयमिसङ्घाटकं दृष्टम् ॥१॥

वहुकृत्वो यतयः किं आणायै[1] मम गृहाणि निविशन्ते ।
वो वाति सरूपतया त इवादृक्षत मया त्रिरपि ॥२॥

स्नेहश्च तेषु मेऽभूत्किं भगवन्नस्ति पूर्वजन्मसम्बन्धः ।
अस्तीति सूरिरवदन्ननु तनयास्ते षडप्येते ॥३॥

भद्रिलपुरे प्रवृद्धा गृहीतदीक्षाः सहैव मत्तस्ते ।
अन्तेऽपि च मोक्ष्यन्ते दीक्षित्वाऽच्युतमाप्स्यसि त्वमपि ॥४॥

तदनन्तरं गणेशो दिचोदितः सत्यभामया प्रोचे ।
तस्या. पुराणजन्मान्येवं विनयावनतगात्र्या. ॥५॥

अत्रैव भद्रिलपुरे मरीचिनाम्नो द्विजस्य कपिलायाम् ।
मुण्डशालायनोऽभूत्पुत्रो विख्यातकाञ्चचण ॥६॥

कमलश्रीरमणोऽस्मिन् मेघरथ सत्यकं नृपोऽमात्यम् ।
सन्देहिक्याऽप्राक्षीत्परजन्म किमस्ति नास्तीति ॥७॥

तेनाऽभ्यधायि विद्वान् विप्रो मुण्डकशालायनोऽस्तीह ।
विस्तीर्णशास्त्रचक्षुस्तमेव चाहूय पृच्छाम ॥८॥

राज्ञा तदेति विप्र. प्रत्याहूतो दिदेश कुदानानि ।
लोभातिकानयुक्त्या परलोकसुखप्रदानीति ॥९॥

---

१. यवाग्वर्थमित्यर्थः ।

# पञ्चम सर्ग

अथानन्तर उस सभामें देवकीने जिनेन्द्र भगवान्‌से पूछा कि हे स्वामिन् ! आज मैंने संघमें चलने वाले, पापनाशकारी मुनियोके जोड़ेको तीन वार घरमें आया हुआ देखा है। क्या मेरे घरमें लपसी (आहार)के लिए वे ही मुनि बहुत वार आ सकते है या नहीं ? अथवा मैंने ही उन मुनियोंको समान रूप होनेसे, तीनो वार एक सा ही समझ लिया है। उनमें मेरा पुत्र-जैसा स्नेह हो रहा है, तो क्या भगवन् ! उनसे मेरा कोई पूर्वजन्मका सम्बन्ध है ? तब गणधरने उत्तर दिया कि हाँ ये छहों मुनि तेरे ही पुत्र हैं ॥१-३॥ भद्रिलपुरमे उनका लालन-पोषण हुआ है और उन सबने एक साथ ही मुझसे दीक्षा ले ली है अन्त मे वे सभी मोक्ष जावेगे। और तुम भी दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग जाओगी ॥४॥

तदनन्तर सत्यभामाने गणधरसे अपने पूर्वभव पूछे और उनने भी उस विनयावनत रानीके पूर्वभव इस प्रकार कहे ॥५॥ इसी भारतवर्षके भद्रिलपुर नगरमें मरीचि नामके ब्राह्मणको उसकी कापिला नामकी पत्नीसे मुण्डशालायन नामका पुत्र हुआ, जो कि काव्यशास्त्रका विख्यात पण्डित था। वहाँका राजा मेघरथ था तथा उसकी रानी कमलश्री थी। एक वार उस राजाने मनमे सन्देह होनेसे अपने मंत्री सत्यकसे पूछा कि परलोक है कि नहीं ? तब उसने उत्तर दिया कि हमारे शहरमे मुण्डशालायन नामका एक विद्वान् रहता है वह अनेक शास्त्रोंको जाननेवाला है, अच्छा हो हम उसे ही बुलाकर पूछें। तब राजाने उसे बुलाकर पूछा पर उस लोभी ब्राह्मणने दानों— गौ. भू. कन्या—को ही परलोकमें सुख देने

प्रेतसुखकाङ्क्षयाऽसौ श्रद्धाय नृपोऽददाद् द्विजगणाय ।
गोभूहिरण्यकन्यास्तद्दीक्षया सर्वलोकोऽपि ॥१०॥
प्रज्ञाप्य नवमतीर्थे व्युच्छिदे लुब्धबुद्धिरन्यायम् ।
तत्पापफलोत्कर्षात्सप्तमनरके द्विजो जज्ञे ॥११॥
पर्य्यायिनरकतिर्यग्गतिष्वसावन्ततो मनुष्यभवे ।
गन्धवत्याश्च तीरे महागिरौ गन्धमादनके ॥१२॥

म्लेच्छ. पर्वतकोऽभूद्वल्लरीवल्लभोऽन्यदा तस्मिन् ।
श्रीधरधर्मौ यातौ प्रतिलभ्य सचारणावचले ॥१३॥

ताभ्यां निशम्य जगृहे प्रोषधनियमं स तेन मृत्वान्ते ।
विद्याधरक्षितिधरे महाबलस्यालकापुर्याम् ॥१४॥

ज्योतिर्मालागर्भे शतबलिनोऽभून्नभश्चरो भ्राता ।
हरिवाहनः कनीयान्नृपतिश्च कदाचिदात्मसुतौ ॥१५॥

राज्ये नियुज्य धर्मं श्रुत्वा श्रीधरमुनेश्चरणमूले ।
निर्वन्धात्प्राव्राजीत्परमगतिं चापि पुनरापत् ॥१६॥ युग्मम् ।

हरिवाहनोऽपि पश्चाद् भ्रात्रा विद्रावितो विरोधवता ।
भगलीदेशजशैले स्थितः सनाम्न्यम्बुदावर्त्ते ॥१७॥

भूत्वाऽम्बरचारणयोः श्रीवर्माऽनन्तवीर्ययो. शिष्यः ।
आराध्य चामरोऽभूदीशानेऽन्ते ततो मुक्त्वा ॥१८॥ युग्मम् ।

इह चैव राजताद्रौ रथनूपुरचक्रवालनगरेऽभूत् ।
नृपतिः सुकेतुनाम्ना स्वयम्प्रभा तस्य खलु कान्ता ॥१९॥
जाताऽसि तयोस्तनया सम्भिजनिमित्तवाग्निर्देशात् ।
आनीय विष्णवे त्वं दत्ता मथुरां परमभूत्या ॥२०॥

वाला बतलाया। उसपर उस राजाने परलोक में सुखकी अभिलाषासे ब्राह्मणोंके लिए श्रद्धा पूर्वक गौ, भू, हिरण्य और कन्या आदि दानमें दिये। सब लोगोंने भी उसका अनुकरण किया ॥८-१०॥ इस प्रकार उस लोभी ब्राह्मणने नवमे तीर्थकालके विच्छेदके समय कुदानोंका उपदेश दिया, और उस पाप फलके कारण सातवे नरकमे गया ॥११॥

तदनन्तर वहाँसे निकल कर अनेक बार नरक तिर्यञ्च गतियोमें घूम फिर वह मनुष्य भवमे आया और गन्धवती नदीके किनारे गन्धमादन पर्वतपर पर्वतक नामका भील हुआ। उसकी स्त्रीका नाम वल्लरी था। एक समय वहाँ श्रीधर और धर्म नामके दो चारण मुनि आये, उनसे उसने धर्मोपदेश सुन कर प्रोषध व्रत धारण किया और अन्तमे मरण कर विजयार्ध पर्वतकी अलका नगरीमें राजा महाबल और रानी ज्योतिर्मालासे हरिवाहन नामका छोटा पुत्र हुआ। उसके बड़े भाईका नाम शतबली था। एक समय राजाने श्रीधर मुनिके पास धर्मोपदेश सुनकर विरक्त हो अपने दोनों पुत्रोंको राज्य देकर, दीक्षा ले ली और अन्तमें मोक्ष प्राप्त किया ॥१२-१६॥

एक समय हरिवाहनको उसके भाईने झगड़ा कर निकाल दिया। इस लिए वह भगली देशके अन्बुदावर्त पर्वतपर श्रीवर्मा और अनन्तवीर्य नामके दो गगनचारी मुनियोंका शिष्य हो गया। और तपस्या कर ईशान स्वर्गमे देव हुआ। अन्तमें वहाँसे च्युत होकर वह इसी विजयार्ध पर्वतके रथनूपुरचक्रवाल नगरमे राजा सुकेतु और स्वयम्प्रभा रानीसे उनकी पुत्री तुम्हीं सत्यभामा हुई हो। तुम्हारे पिताने संभिन्न नामके ज्योतिषीकी सलाहसे तुम्हे मथुरा लाकर बड़े उत्सवके साथ कृष्णके साथ विवाह दिया ॥१७-२०॥ अब तुम इस जन्ममें तपस्या कर फिर देव होओगी

तपसा देवो भूत्वाऽऽगत्य नृपः संश्च सेत्स्यतीत्यन्ते ।
रुक्मिण्याः पूर्वभवांश्च विज्ञापितस्तयैव गणी ॥२१॥

अस्मिन्भारतवास्ये लक्ष्मीग्रामे द्विजस्य मगधेषु ।
लक्ष्मीमतीति भार्या चाभिरूपा सोमदेवस्य ॥२२॥

वरदर्पणे स्ववक्त्रं पश्यन्ती साऽन्यदा यतिं दृष्ट्वा ।
तपसा कृशीकृताङ्गं समाधिगुप्तं स्वमानेन ॥२३॥

विचिकित्सया प्रविष्टं भिक्षार्थं गर्हयाम्बभूवैनम् ।
तेनोत्सर्पदुदुम्बरकुष्ठा मृत्वा प्रविश्याऽग्निम् ॥२४॥ युग्मम् ।

सा ह्यार्तेन च जाता पुन. [1]खरी लवणभारतो मृत्वा ।
राजगृहे खेलाऽऽख्यस्योत्पेदे शूकरी पश्चात् ॥२५॥

मण्डूकग्रामेऽभून्मण्डूक्या त्रिपदमत्स्यबन्धस्य ।
दुहिता पूतिकगन्धा त्यक्ता मात्रा स्वपापेन ॥२६॥

आदाय पितामह्या प्रवर्द्धिता [2]निष्कुटेऽन्यदा तु तरोः ।
लब्ध्वा समाधिगुप्तं जालेनाच्छादयत्कृपया ॥२७॥

यतिना पुन. प्रभाते कारुण्याद् बोधिता पूर्वभवान् ।
अवधिज्ञानिनमेनं वन्दित्वाऽऽदत्तगृहधर्मम् ॥२८॥

गत्वा सोपारपुरीमार्या प्रतिलभ्य नृपगृहं ताभि. ।
आचाम्लवर्द्धमान कुर्वाणा प्रोपधं प्रययौ ॥२९॥

वन्दित्वा सिद्धशिला नीलगुहामध्यतिष्ठदत्रैषा ।
जिनदत्ताऽऽख्येन पुन. सन्न्यासं कारिता मृत्वा ॥३०॥

जाताऽच्युतेन्द्रमहिषी सुवल्लभा गगनवल्लभा नाम्ना ।
पञ्चोत्तरपञ्चाशत्पल्योपमजीविता तस्मात् ॥३१॥

---

१. गर्दभी । २. गृहोद्याने ।

और वहाँसे अवतरित हो राजा होकर अन्तमे मोक्ष जाओगी। इसके वाद रुक्मिणीने भी अपने पूर्व-भव पूछे। तब गणधरने इस इस प्रकार कहा कि ॥२१॥

इसी भारतवर्षमे मगध देशके लक्ष्मीग्राममें सोमदेव नामक ब्राह्मण रहता था और लक्ष्मीमती उसकी सुन्दरी पत्नी थी ॥२२॥ एक समय वह अपने चेहरेको दर्पणमें देख रही थी कि उसी समय भिक्षाके लिए, तपसे अत्यन्त दुबले-पतले समाधिगुप्त नामके एक मुनि वहाँ आये पर इसने अपने (रूपके) अभिमानके कारण घृणापूर्वक तिरस्कार कर दिया। इससे उसे निरन्तर बढ़ने वाला उदुम्बर कोढ़ हो गया। जिसके सन्तापसे वह अग्निमें जलकर मर गई ॥२३–२४॥ और आर्तध्यानके कारण गदही हुई। फिर नमकके अधिक बोझ लादनेसे मरकर राजगृहमे खेल नामक मनुष्यके यहाँ शूकरी हुई। फिर वहाँसे मरकर मण्डूक ग्राममे त्रिपद नामके मछुएकी पत्नी मण्डूकीसे पूतिगन्धा नामकी पुत्री हुई। पर पापके फलस्वरूप उसकी माताने उसे छोड़ दिया परन्तु उसकी दादीने उसका पालन किया। एक समय वृक्षोके बगीचेमे (रात्रिमे) समाधिगुप्त मुनिको देख (ठंढसे बचानेके लिए) दया भावसे उन्हे जालसे ढँक दिया ॥२५–२७॥ फिर सुबह मुनिराजने उसे दया भावसे उसके पूर्व भव कहे। जिन्हे सुनकर उसने उन अवधिज्ञानी मुनिकी स्तुतिकर श्रावकके व्रतोको धारण कर लिया ॥२८॥ एक समय वह सोपारक नगरीमे गई वहाँ उसका आर्यिकाओसे समागम हुआ। उनके साथ आचाम्लवर्धन नामके प्रोषधव्रतको करती हुई राजगृह गई। वहाँ सिद्धशिलाकी वन्दना कर नीलगुफाके अन्दर बैठी और जिनदत्ता आर्यिकाकी सहायतासे संन्यास धारण कर मरी जिससे अच्युत स्वर्गमे इन्द्रकी गगनवल्लभा नामकी प्रधान इन्द्राणी हुई। वहाँ उसकी पचपन पल्यकी आयु थी ॥२९–३१॥

अवतीर्य भीष्मनृपतेः श्रीमत्यां रुक्मिणोऽभवो भगिनी ।
इह रुक्मिणीति विदिता कुण्डिननगरे विदर्भेषु ॥३२॥

तव चाशयं विदित्वा विवाहसमये तदेत्य गोविन्दः ।
त्वद्भ्रातरञ्च जित्वा त्वामानैषीत्परा भद्रे ॥३३॥

तपसा विबुधत्वमितो भवे तृतीये गमिष्यसि श्रेयः ।
जम्बावत्या जन्मान्यूचे पृष्टस्तथैव गणी ॥३४॥

अस्मिन् जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहेषु पुष्कलावत्याम् ।
गृहपो देविलनामा बभूव पुरि वीतशोकायाम् ॥३५॥

तज्जाया देवमती तद्दुहिताऽऽसीद्यशस्वती नाम्ना ।
दत्ता सुमित्रनाम्ने गृहपतिपुत्राय तत्रैव ॥३६॥

तस्मिन्मृते कदाचित्पतिः प्रवासेन दुःखितामेनाम् ।
जिनदेवः सम्यक्त्वं जैनः प्रज्ञापयामास ॥३७॥

साऽश्रद्धाय सुतत्वं लौकिकदानोपवासनियमेन ।
मृत्वा नन्दननाम्नो भार्याऽऽसीन्नन्दने मेरौ ॥३८॥

[1]व्यन्तरोपभोगं चतुराशीतिकसहस्रसब्धीनाम् ।
उपभुज्य ततश्च्युत्वा चिरकालं संसृतौ सृत्वा ॥३९॥

जम्बूद्वीपैरावतविजयपुरे बन्धुषेणभूपस्य ।
उदपादि बन्धुमत्यां बन्धुयशा अनुमता दुहिता ॥४०॥

तत्र जिनदेवदुहितुः श्रीमत्याः प्रोषधं नमस्कारम् ।
प्रतिपद्य च मृत्वाऽन्ते स्वयम्प्रभाऽभूद्धनदपत्नी ॥४१॥

जम्बूपूर्वविदेहे दिवोऽवतीर्णाऽत्र पुण्डरीकिण्याम् ।
तनया तु वज्रमुष्टेर्बभूव सुमतिः सुभद्रायाम् ॥४२॥

---

१. व्यन्तरसम्बन्धिनमित्यर्थः ।

फिर वहाँसे अवतरित हो विदर्भदेशके कुण्डिनपुर नगरमें राजा भीष्म और रानी श्रीमतीसे रुक्मीकी बहिन तुम—रुक्मिणी नामसे विख्यात हुई हो। कृष्ण तुम्हारे आशय—प्रेम को जानकर विवाहके समय आकर और तुम्हारे भाईको जीतकर हे भद्रे ! तुम्हे ले गया। अब तुम तपकर देव होओगी और यहाँसे तीसरे भवमे मोक्ष जाओगी। इसके वाद जाम्बवतीने भी अपने पूर्व जन्म पूछे और गणधरने इस प्रकार कहा ॥३२–३४।

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमे पुष्कलावती देशमे वीतशोका नामकी नगरी थी। वहाँ देविल नामका एक गृहस्थ था। उसकी पत्नीका नाम देवमती तथा पुत्रीका नाम यशस्वती था। उसने कन्याका विवाह सुमित्र नामके किसी गृहपतिके पुत्रसे कर दिया। थोड़े दिनो वाद उसका पति परदेश गया और वहीं मर गया जिससे उसे बड़ा दुख हुआ। तब जिनदेव नामके किसी जैन मुनिने उसे सम्य-क्त्वका उपदेश दिया, पर वह उत्तम जैनतत्त्वोपर श्रद्धा न कर लोकिक ( वाहिरी ) दान उपवास आदि करने लगी। अन्तमे मरकर मेरुपर्वतके नन्दन वनमे नन्दन नामक यक्षकी यखिणी हुई ॥३५–३८॥ वहाँ उसने चौरासी हजार सागर तक व्यन्तर देवोंके भोग कर वहाँसे च्युत हो संसारमें चिरकाल तक भ्रमण किया ॥३९॥

इसके बाद जम्बूद्वीपमे ऐरावत क्षेत्रके विजय पुर नगरमे राजा बन्धुषेण और रानी बन्धुमतीसे उनकी बन्धुयशा नामसे प्यारी पुत्री हुई। वहाँ उसने जिनदेवकी पुत्री श्रीमतीसे पञ्चनमस्कार मंत्र और प्रोषधव्रत ग्रहण किये और अन्तमे प्राण त्याग कर कुवेरकी पत्नी स्वयम्प्रभा हुई। ४०–४१॥ फिर स्वर्गसे अवतीर्ण हो इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें पुण्डरीकिणी नगरीमे राजा वज्रमुष्टि और रानी सुभद्रासे सुमति नामकी पुत्री हुई। एक दिन उसने सेठके

गृही व्रतानि जगृहे श्रेष्ठिगृहे सा सुदर्शनार्यायाः ।
रत्नावलिं चरित्वा विधिवत्प्राणान्प्रहायाऽन्ते ॥४३॥
सप्तदशपल्यजीवो ग्रहेन्द्राङ्गना दिवि बभूव ।
अन्ते ततोऽवतीर्णा रजताऽद्रेर्दक्षिणश्रेण्याम् ॥४४॥
जाम्बवनगरे नृपतेर्जम्बूसेनाप्रियस्य तन्नाम्नः ।
जाम्बवतीति दुहिता त्वमभूः खचरेषु विख्याता ॥४५॥
नारदवचनाद् गत्वा प्रतिलभ्य च तार्क्ष्यवाहिनीं विद्याम् ।
चक्री त्वामुपयेमे त्वत्पितरं युधि पराजित्य ॥४६॥
तपसा तृतीयजन्मनि तथैव मोक्षं गमिष्यसि त्वमिति ।
पृष्टः सुसीमया तद्भवावलिं गणधरः प्रोचे ॥४७॥
आसीद्विदेहवर्षे धातक्याः पूर्वमेरुपौरस्त्ये ।
पुरि रत्नसञ्चयायां विषयेऽपि च मंगलावत्याम् ॥४८॥
राजाऽत्र विश्वसेनो युधि च स वै कदाचिदाहतो महति ।
क्षितिपेन पद्मसेनेनाऽयोध्यानगरनाथेन ॥४९॥
तस्याऽमात्यः सुमतिस्तद्देवीं श्रावकोऽन्वशाद्धर्मम् ।
साऽणुव्रता स्वमोहादप्रतिपद्यैव सम्यक्त्वम् ॥५०॥
पतिविप्रवासशोकाद्बभूव व्यन्तरी ज्वलनवेगा ।
मृत्वा विजयद्वारे वरपत्नी विजयदेवस्य ॥५१॥
भुक्त्वोपभोगमस्मिन्वर्षाणां दशसहस्रमभ्रासीत् ।
संसारे चिरकालं ततोऽवतीर्णा पुनश्चैव ॥५२॥
जम्बूपूर्वविदेहे सीताप्रा[१]ङ्क्के तटश्रिते रम्ये ।
राष्ट्रे यक्षिलनाम्नः शालिग्रामे च गृहपस्य ॥५३॥
अजनिष्ट देवसेनागर्भे यक्षप्रसादतो लब्धा ।
नाम्नापि यक्षदेवी यक्षीवाक्ष्णोः प्रिया तनया ॥५४॥

---

१. दक्षिणे तटे इति हरिवंशपुराणम् ।

घरमें सुदर्शना नामकी आर्यिकासे श्रावकोंके व्रत लिये। तथा रत्नावली व्रतको विधिपूर्वक पालकर अन्तमें मरकर ब्रह्म स्वर्गमें इन्द्रकी इन्द्राणी हुई। वहाँ उसकी सत्तरह पल्यकी आयु थी। फिर वहाँसे भी अवतरित हो विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें जाम्बव नगरके राजा जाम्बव और रानी जम्बुसेनासे तुम जाम्बवती नामकी पुत्री विद्याधरोंमे विख्यात हुई हो ॥४२–४५॥ और कृष्णने नारदकी प्रेरणासे तथा गरुडवाहिनी विद्याके बलसे तुम्हारे पिताको युद्धमे जीत कर तुमसे विवाह किया। तुम भी तप कर अबसे तीसरे भवमे मोक्ष जाओगी। इसके बाद सुसीमाने भी अपने पूर्व भव पूछे, तब उसे भी गणधरने इस प्रकार कहा ॥४६–४७॥

धातकीखण्ड द्वीपमे पूर्व मेरुके पूर्व विदेह क्षेत्रमे मगलावती देशकी रत्नसंचया नगरीमे विश्वसेन नामका राजा रहता था। उसे किसी समय अयोध्या नगरके राजा पद्मसेनने हरा दिया (इससे उसकी रानीको बहुत दुख हुआ)। तब उसके मत्री सुमति नामके जैन श्रावकने उसे धर्मोपदेश दिया। पर वह मोहनीय कर्मके उदयसे सम्यक्त्वको बिना धारण किये ही अणुव्रतोंको पालन कर अपने पतिके शोकसे मरकर ज्वलनवेगा नामकी व्यन्तरी हुई। जो कि जम्बूद्वीपके विजय द्वारके अधिष्ठाता विजय देवीकी पत्नी थी ॥४८–५१॥ वहाँ दश हजार वर्षों तक सुखोपभोग कर संसारमे बहुत समय तक भटकती फिरी, फिर वहाँसे आकर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमे सीता नदीके पूर्व तट पर, रम्य नामक देशके शालिग्राममें यक्षिल नामके गृहस्थकी पत्नी देवसेनाके गर्भसे पुत्री हुई। वह यक्षके प्रसादसे हुई थी तथा यक्षीके समान आखोंको प्रिय थी, इस लिए उनका नाम यक्षी रखा गया ॥५२–५४॥

एक समय वह अपने देवताको पूजनेके लिए यक्ष मन्दिरमें

यक्षाऽऽलयेऽन्यदा सा स्वदेवतापूजनार्थमत्र गता ।
शुश्राव सूरिमिष्टं वरधर्मं धर्मसेनाऽऽख्यम् ॥५५॥
आहारदानमस्मै भक्तियुता सन्ददौ समभ्यर्च्य ।
जातुचिदथ सा प्रययौ क्रीडितुमचले सह सखीभिः ॥५६॥
विमलगिरौ नाम्न्यऽस्मिन्नकालवर्षार्दितां गुहां महतीम् ।
शीघ्रं प्रविश्य हरिणा ग्रस्ता प्रजहौ प्रियान्प्राणाम् ॥५७॥
भूत्वाऽतो हरिवर्षे द्विपल्यतुल्योपभोगमुपभुज्य ।
जाता ज्योतिर्लोके दिव्यापिमनोहरज्योतिः ॥५८॥
भुक्त्वाऽर्धपल्यभोगं तत्रान्ते प्रच्युता ततश्चापि ।
जम्बूद्वीपविदेहे पौरस्त्ये पुष्कलावत्याम् ॥५९॥
नृपतेरशोकनाम्नो श्रीमत्यामजनि वीतशोकेशः ।
श्रीकान्तेति च दुहिता श्रीरपरेवाऽतिरूपयुता ॥६०॥
जिनदत्ताऽऽर्यापार्श्वे धर्मं श्रुत्वाऽन्यदा विनिष्क्रान्ता ।
[1]कनकावलि चरित्वा महेन्द्रस्याभवत्कान्ता ॥६१॥
एकादशाङ्गसौख्यं भुक्त्वा पल्योपमान्यतोऽप्यन्ते ।
अवतीर्णा गिरिनगरे सुज्येष्ठायां सुराष्ट्रेषु ॥६२॥
त्वं राष्ट्रवर्द्धनस्य क्षितिपालस्याङ्गजा सुसीमाऽऽसीः ।
त्वं व्रतभक्तं भुक्त्वा सहाशिषा त्वत्पितुः क्रोधात् ॥६३॥
हरये समाचचक्षे त्वत्सौन्दर्यं च नारदाच्छ्रुत्वा ।
तच्छौरिरेत्य जनकं तव जित्वा त्वामुपायंस्त ॥६४॥
मुक्तिस्तथैव ते स्याल्लक्ष्मणया पृष्टो गणधरश्चोचे ।
तत्पूर्वभवांश्च पूर्वविदेहेस्थकच्छकावत्याम् ॥६५॥
सीतोत्तरकूलस्थेऽरिष्टपुरे वासवोपमो राजा ।
नाम्नाऽपि वासवोऽभूत्सुमतिस्तस्याऽग्रवनिताऽऽसीत् ॥६६॥

---

१. रत्नावलिं इति हरिवंशपुराणे ।

गई थी। वहाँ उसे धर्मसेन नामके मुनिराज मिले जिनसे उसने उत्तम धर्मोपदेश सुने। फिर उनकी पूजा कर बड़ी भक्तिके साथ उन्हें आहारदान दिया। किसी समय वह अपनी सखियोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिए विमलगिरि पर्वतपर गई पर वहाँ अकाल वृष्टिसे पीडित होकर बड़ी गुफामें घुस गई जहाँ आकर एक सिंहने उसे शीघ्र ही खा लिया जिससे उसने अपने प्रिय प्राणोंको त्यागा ॥५५-५७॥ फिर वहाँसे वह हरि क्षेत्रमें उत्पन्न हुई। वहाँ दो पल्य तक भोगोपभोग भोग च्युत हुई और चारो ओर मनोहर प्रकाश फैलाती हुई ज्योतिषी देवोमें देवी हुई। वहाँ अर्धपल्य प्रमाण भोगोको भोगकर वहाँसे च्युत हुई और यहाँ जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें पुष्कलावती देशके वीतशोका नगरीके राजा अशोक और रानी श्रीमतीसे श्रीकान्ता नामकी पुत्री हुई जो कि दूसरी लक्ष्मीके समान ही अतिरूपवती थी ॥५८-६०॥ एक समय उसने जिनदत्ता आर्यिकाके पास धर्मोपदेश सुनकर दीक्षा ले ली और कनकावलि तप करने लगी और अन्तमे मरकर महेन्द्र स्वर्गमें इन्द्राणी हुई ॥६१॥ वहाँ ग्यारह पल्य तक शरीर सुख भोग वहाँसे भी अन्तमें अवतरित हो सुराष्ट्र देशके गिरिनगरमें राजा राष्ट्र-वर्धन और रानी सुज्येष्ठाकी पुत्री तुम सुसीमा नामसे हुई हो। एक समय तुम व्रतकी पारणाकर आशीर्वाद पाकर बैठी थी कि तुम्हारे पितासे क्रुद्ध हो नारदने तुम्हारे सौन्दर्यकी चर्चा कृष्णसे की। यह सुनकर कृष्ण वहाँ आये और तुम्हारे पिताको जीतकर उन्होंने तुमसे विवाह कर लिया ॥६२-६४॥ तुम्हारी भी उसी तरहसे ( तीसरे भवमें ) मुक्ति होगी। इसके बाद लक्ष्मणाने अपने पूर्व भव पूछे, तब गणधरने उत्तर दिया—

पूर्व विदेहके कच्छकावती देशमे सीतोदा नदीके उत्तर तटमे अरिष्ट पुर नामके नगरमे इन्द्रके समान वासव नामका राजा

सान्तःपुरः कदाचिन्नरपतिरभिवन्दितुं सशिष्यगणम् ।
सूरिं सागरसेनं ययौ सहस्राऽऽम्रवनसंस्थम् ॥६७॥

तस्मान्निशम्य धर्मं निर्विण्णः प्राव्राजीत् तमभिषिच्य ।
वसुषेणमात्मसूनुं न देव्यदीक्षिष्ट तत्स्नेहात् ॥६८॥

अन्तःपुरं प्रविष्टां सोऽनश्रियमेकदाऽऽर्यिकां देवी ।
दानेन पूजयित्वा तस्याः शुश्राव धर्मवचः ॥६९॥

स्वसुतनृपविप्रयोगान्ममार साऽत्यन्तशोकदुःखेन ।
भूत्वा पुनः [1]पुलन्दी लब्ध्वाऽम्बरचारणं तस्मिन् ॥७०॥

पप्रच्छ नन्दिभद्रं स्वपूर्वजन्माऽगदीच्च सोऽपि यतिः ।
अवधिज्ञानेनाऽस्यै वासवनृपतेः प्रिया त्वमिति ॥७१॥

दिवसत्रितयानशना मृत्वा स्मृतपूर्वजातिकाम्यत्वात् ।
सुरस्य मेघमालिनी नारदस्याऽभवच्च देवी[2] ॥७२॥

च्युत्वा ततोऽत्र भरते प्राच्यश्रेण्यां नभश्चरावासे ।
चन्दनपुरे महेन्द्रानुन्वयोः कनकमालाऽभूत् ॥७३॥

कृत्वा स्वयंवरे सा महेन्द्रनगराधिपं प्रकटकीर्त्तिम् ।
हरिवाहनं खगेन्द्रं तस्याऽभूद्वल्लभा सुतराम् ॥७४॥

अर्हद्गृहमहिमार्थं गताऽन्यदा सिद्धकूटमत्रैषा ।
चारणमुनेः स्वजातीः श्रुत्वा मुक्तावलीमार्याम् ॥७५॥

उपवासमुपोष्यासीत्सनत्कुमारेन्द्रवल्लभा देवी ।
नवपल्यान्युपभोगं भुक्त्वा तस्मात्समवतीर्य ॥७६॥

सोपारपुरे त्वमभूः कुलमत्यां श्लक्ष्णरोमनृपदुहिता ।
खचरो निवर्त्तमानोऽनलवेगो दक्षिणाम्बुनिधेः ॥७७॥

---

१. शबरी । २. अष्टमे कल्पे इन्द्रस्य नर्तकी इति उत्तरपुराणे ।

रहता था। उसकी पट्टरानीका नाम सुमति था ॥६५-६६॥ एक समय राजा अपने रनिवासके साथ सहस्राम्रवनमें अपने शिष्यों सहित विराजित सागरसेन मुनिके पास गया और उनसे धर्मोपदेश सुनकर विरक्त हो गया तथा अपने पुत्र वसुषेणका राज्याभिषेक कर दीक्षा ले ली, पर रानीने अपने पुत्रके स्नेहसे दीक्षा नहीं ली। एक दिन रनिवासमे सोमश्री नामकी आर्यिका आई। उसे रानीने आहार दान दे पूजा की और उससे धर्मोपदेश सुना ॥६७-६९॥ (पर वह आर्यिका न हो सकी) तथा अपने पुत्र और पतिके वियोगसे वह अत्यन्त दुःखके साथ मरी और भीलनी हुई। एक समय उसने नन्दिभद्र नामके चारण मुनिको पा उनसे अपने पूर्वजन्मकी बात पूछी। तब उन मुनिराजने अवधिज्ञानके बलसे उसे कहा कि तुम राजा वासवकी रानी थीं ॥७०-७१॥ यह सुनते ही उसे जातिस्मरण हो आया और तीन दिनका उपवास कर मरण किया और नारद देवकी मेघमालिनी नामकी देवी हुई ॥७२॥ वहाँसे च्युत होकर इसी भरत क्षेत्रके विजयार्ध पर्वतकी पूर्वश्रेणीमे चन्दनपुरके राजा महेन्द्र और अनुन्धरी रानीसे कनकमाला नामकी पुत्री हुई ॥७३॥ फिर उसने स्वयंवरमें महेन्द्र नगरके विख्यातकीर्ति राजा हरिवाहन विद्याधरको वरण कर उसकी रानी हुई ॥७४॥

एक समय वह जिन-चैत्यालयोकी पूजा करनेको सिद्धकूट पर्वत पर गई। वहाँ चारणमुनिसे अपने पूर्व जन्मोंको सुन, श्रेष्ठ मुक्तावली तपको करके अन्तमे उपवाससे मरणकर सनत्कुमार स्वर्गमें इन्द्रकी इन्द्राणी हुई और नव पल्यतक उपभोगोको भोग फिर वहाँसे च्युत होकर सोपारपुर नगरमे राजा श्लक्ष्णरोम और रानी कुरुमतीसे तुम लक्ष्मणा नामकी पुत्री हुई हो। एक समय दक्षिण समुद्रसे लौटते हुए अनलवेग नामके विद्याधरने तुम्हे

त्वां दृष्ट्वा संचल्यौ हरये श्रुत्वा तदैत्य कृष्णोऽपि ।
दुष्प्रसहद्रुमसेनौ त्वत्सहजावाहवे जित्वा ॥७८॥

त्वां व्यवहृत्य च ज्येष्ठां सुलक्ष्मणां हलधरस्तथैवेति ।
तव मुक्तिः गान्धार्या भवान् गणी सोऽभ्यधात्पृष्टः ॥७९॥

इह कोशलेष्वयोध्यानगरीशो रुद्रधामभूपस्य ।
विनयश्रीरिति देवी देववधूतुल्यलावण्या ॥८०॥

सिद्धार्थवनोद्याने सनृपा सा श्रीधराय दानमददात् ।
तत्पुण्यफलाज्जज्ञे कालं कृत्वा कुरुष्वन्ते ॥८१॥

उपभुज्य भोगमतुलं तस्मात्पल्योपमत्रयं भुक्त्वा ।
अजनि शशिनोऽग्रपत्नी पल्याष्टकभागतुल्यायुः ॥८२॥

तस्मादिहावरूढा भारतरजताऽचलोत्तरश्रेण्याम् ।
विद्युद्वेगस्याऽसीत्सुता गगनवल्लभे नगरे ॥८३॥

विद्युन्मत्या गर्भेऽमितवाहनगामिनः प्रिया भगिनी ।
कन्या खलु विनयश्रीर्विनयश्रीर्विग्रहवतीव ॥८४॥ युग्मम् ।

नित्यालोकपुरीशे महेन्द्रविक्रमवियच्चरेन्द्राय ।
प्रददेऽन्यदा स मेरौ चारणयुगलं समुल्लङ्घ्य ॥८५॥

तत्क्रममूले धर्मं श्रुत्वा हरिवाहनं स्वकान्तसुतम् ।
अभिषिच्य प्राव्राजीद्विहाय विनयश्रियं वीरः ॥८६॥

साप्युपवासं कृत्वा नाम्ना सर्वर्तुकं समाराध्य ।
शक्रस्य वल्लभाऽभूत्पल्योपमपञ्चकस्थितिका ॥८७॥

देख कृष्णके पास आकर कहा। कृष्णने भी तुम्हारे दुष्प्रसह एवं द्रुमसेन नामके भाइयोको युद्धमें हराकर तुमसे विवाह किया और तुम्हारी वड़ी बहिन सुलक्षणासे वलरामने विवाह किया। तेरी भी मुक्ति उसी तरह (तीसरे भवमे) होगी। इसके बाद गान्धारीसे भी अपने भव पूछे जानेपर गणधरने कहा ॥७५-७९॥

इसी जम्बूद्वीपके कोशल देशमे अयोध्याका राजा रुद्रधाम था जिसके देवाङ्गनाओके समान सुन्दरी विनयश्री नामकी रानी थी। एक समय उस रानीने राजाके साथ सिद्धार्थ वनमे जाकर श्रीधर नामके मुनिको आहार-दान दिया। उस पुण्यके बलसे, मृत्युके बाद वह उत्तरकुरुमे पैदा हुई ॥८०-८१॥ वहाँ तीन पल्य पर्यन्त अतुलनीय भोगोंको भोगकर अन्तमे मरकर ज्योतिषी देवोके इन्द्र चन्द्रकी प्रधान देवी हुई जहाँ उसकी आयु पल्यके आठवें भाग थी ॥८२॥ फिर वहाँसे अवतीर्ण हुई और उस समय भारतवर्षके विजयार्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें गगनवल्लभ नगरका विद्युद्वेग नाम का राजा था और विद्युन्मति उसकी रानी थी। उनके अमितवाहनकी प्यारी बहिनके रूपमे विनयश्री नामकी पुत्री हुई जो कि विनयलक्ष्मीका साक्षात् अवतार थी ॥८३-८४॥ फिर उसका विवाह नित्यालोकपुरके राजा महेन्द्रविक्रम विद्याधरसे कर दिया गया। एक समय राजा महेन्द्रविक्रमको, मेरु पर्वतपर दो चारण मुनि मिले। उनके चरणोंमें बैठकर धर्मोपदेश सुननेसे उसे वैराग्य हो गया। फिर उस वीरने अपने पुत्र हरिवाहनका राज्याभिषेक कर तथा विनयश्रीको त्याग दीक्षा ले ली। विनयश्री भी सर्वतोभद्र नामक उपवास करके अन्तमे समाधिमरण पूर्वक मरी और सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणी हुई जहाँ उसकी आयु पाँच पल्यकी थी ॥८५-८७॥ इसके बाद वहाँसे अवतरित हो वह गान्धार देशके

अवरुह्य ततस्तस्माद्गान्धारेषु पुरि पुष्कलावत्याम् ।
इन्द्रगिरिमेरुमत्यो राज्ञोश्च त्वमसि तनयाऽऽर्ये ॥८८॥

सुमुखाय दीयमानां नारदवचनेन हयपुरीशाय ।
भ्रात्रा ग्राहिमगिरिणा हृत्वा त्वां चानयद्विष्णुः ॥८९॥

ते मुक्तिरपि तथैव च गौर्य्या पृष्टो गणधरः प्रोचे ।
पूर्वभवानथ तस्या भरतेऽस्मिन्कुरुषु गजपुर्याम् ॥९०॥

धनदेवस्येभ्यस्य च त्वासीत् यशस्वती युवतिष्वग्र्या ।
हर्म्ये स्थिताऽन्यदा सा चारणयुगलं समालोक्य ॥९१॥

सस्मार स्वकजातीर्धातक्या पूर्वमन्दराऽपरतः ।
आनन्दोऽभूच्छ्रेष्ठी विदेहविषये त्वशोकपुरे ॥९२॥

तस्याऽहं नन्दयशा भार्या सस्प्रियतमाऽन्यदा तेन ।
दानमवाप सुपूजां दत्वाऽमितसागराख्यमुनिपतये ॥९३॥

पीत्वाऽम्बरपानीयं सविषं मृत्वा सभर्तृकाऽभूवम् ।
देवकुरुष्ववतीर्णा तस्मादीशानकल्पेशः ॥९४॥

अभ्यन्तरसांसदिकी देव्यभवं प्रच्युता ततश्चान्ते ।
अत्राऽऽसमिति ज्ञात्वा सिद्धार्थवनेऽन्यदा साधुम् ॥९५॥

नत्वा सुभद्रसंज्ञं प्रोषधनियमं ततः समादाय ।
मृत्वाऽभ्यन्तरसंसद्यभवद्देवी दिवि मघोनः ॥९६॥

पल्योपमानि पञ्च प्रभुज्य भोगास्ततश्च्युत्वा ।
वत्सेषु च कौशाम्ब्या सुभद्रनाम्न सुमित्रायाम् ॥९७॥

श्रेष्ठिन्यामजनि सुता धर्ममतिर्नाम साऽन्यदा सुगुणाम् ।
जिनमतिमुपलभ्याऽऽर्यां जिनगुणमुपवासमाधत्ते ॥९८॥ युग्मम् ।

पुष्कलावती नामके नगरमे राजा इन्द्रगिरि और रानी मेरुमतीसे—हे कल्याणि ! तुम्हीं पुत्री हुई हो। तुम्हारे भाई प्राहिमगिरिने तुम्हे हयपुरके राजा सुमुखको देना चाहा था, पर कृष्ण नारदके कहनेसे, युद्धमे उसे मारकर तुम्हे ले आया ॥८८–८९॥ तुम्हारी भी मुक्ति उसी तरह (तीसरे भवमें) होगी। तब गौरीने भी गणधरसे अपने पूर्व भव पूछे। गणधरने भी उत्तर दिया कि—

इसी भरत क्षेत्रके उत्तरकुरु देशमे गजपुर नामका नगर था। ॥९०॥ वहाँ धनदेव नामका एक सेठ था और उसकी यशस्विनी नामकी श्रेष्ठ पत्नी थी। एक दिन वह महलकी छतपर बैठी थी कि उसने आकाशसे जाते दो चारण मुनियोको देखा। इससे उसे जातिस्मरण हो आया कि मैं धातकी खण्ड द्वीपके पूर्वमन्दिरके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें अशोकपुरके सेठ आनन्दकी नन्दयशा नामकी अत्यन्त प्यारी पत्नी थी। एक दिन मैंने अपने पतिके साथ अमितसागर मुनिको दान देकर ( देवकृत ) सम्मान पाया था ॥९१–९३॥ एक दिन मैंने और मेरे पतिने विषमिश्रित वर्षाके पानीको पी लिया जिससे मरकर देवकुरुमें अवतीर्ण हुई और वहाँ मरकर ईशान स्वर्गके इन्द्रकी आभ्यन्तर सभाकी देवी हुई और वहाँसे च्युत होकर यहाँ मैं यशस्विनी हुई हूँ। यह जाननेके वाद उसने एक समय सिद्धार्थवनमे सुभद्र नामके मुनिकी वन्दना कर उनसे प्रोषध व्रत ले लिये और वहाँसे मरण कर स्वर्गमें फिरसे इन्द्रकी भीतरी परिषद्‌की देवी हुई ॥९४–९६॥ वहाँ पाँच पल्यकी आयुतक भोगोको भोग वहाँसे च्युत हुई। और वत्स देशकी कौशाम्बो नामकी नगरीमे सुभद्र सेठ और सुमित्रा सेठानी-से धर्ममती नामकी पुत्री हुई। एक समय उसे गुणवती जिनमति नामकी आर्यिका मिली उनसे ( धर्मोपदेश सुनकर ) जिनेन्द्रगुण-सम्पत्ति नामका व्रत धारण कर लिया ॥९७–९८॥ फिर चार

आराध्य महाशुक्रे भूत्वामरनाथवल्लभा सौख्यम् ।
पल्योपमानि बुभुजे विंशतिमेकादिकान्तं च ॥९९॥

अवपत्य ततस्त्वमभूश्चन्द्रमतेर्गर्भजा सुतनु गौरी ।
इह मेरुचन्द्रनृपतेस्तनया पुरि वीतशोकायाम् ॥१००॥

विजयपुरेशाय पुनर्विजयानन्दाय दीयमानां त्वाम् ।
शौरिर्विगृह्य विदितां बलेन परिणीतवान् भद्रे ॥१०१॥

त्वमिति तथैव च सेत्स्यसि पद्मावत्या पृष्टो गणनाथः ।
तत्पूर्वभवानूचे देशेऽस्मिन्भारते वास्ये ॥१०२॥

नृपतिरवन्तिष्वासीदिहोज्जयिन्यां प्रियः स विजयायाः ।
अपराजित इति नाम्ना विनयश्रीस्तस्य तनयाऽसीत् ॥१०३॥

हरिषेणाय प्रददे नृपाय सा हास्तिशीर्षनगरीशे ।
वरदत्ताय च दानं मुनयेऽदात् साऽन्यदा सपतिः ॥१०४॥

पत्या सह गर्भगृहे मृत्वाऽगुरुधूपकेन हैमवते ।
भूत्वोपभुज्य भोगान् पल्यमतश्चावतीर्याऽन्ते ॥१०५॥

चन्द्रप्रभेति देवी शशिनोऽभूदर्द्धपल्यतुल्याऽऽयु. ।
तस्मादप्यवतीर्णा भरतेऽस्मिन्नेव मगधेषु ॥१०६॥

शाल्मलिखण्डे ग्रामे जयदेवनृपाधिपस्य तनयाऽभूत् ।
गर्भे च देविलायाः कनीयसी पद्मदेवस्य ॥१०७॥

नाम्नाऽपि पद्मदेवी वरधर्माचार्यमेकदा नत्वा ।
अज्ञातफलाभक्षणमेषा व्रतमाददे तस्मात् ॥१०८॥ युग्मम् ।

व्याधाधिपोऽन्यदा तं ग्राममन्च स्कन्दचण्डवाणाख्यः ।
बद्धा रतेच्छयैनां भार्यात्वायोपदुद्राव ॥१०९॥

आराधनाओका आराधन कर मृत्युके वाद सहाशुक्र स्वर्गमे इन्द्रकी इन्द्राणी हुई और वहाॅ इक्कीस पल्योंतक सुख भोग किया ॥९९॥

वहाॅसे च्युत होकर तुम यहाॅ वीतशोकानगरीमे राजा मेरुचन्द्र और रानी चन्द्रमतिसे गौरी नामकी पुत्री हुई हो ॥१००॥ हे भद्रे ! तुम्हारे माता-पिता विजयपुरके राजा विजयानन्दसे तुम्हारा विवाह कर रहे थे। पर जब यह वात कृष्णको मालूम हुई तो उसने युद्ध कर वलपूर्वक तुमसे विवाह किया ॥१०१॥ तुम भी इसी तरह मुक्ति पाओगी। इसके बाद पद्मावतीने अपने पूर्वभव पूछे तो उन्होने कहा–

इसी भारतवर्षमे अवन्ति देशकी उज्जयिनी नगरीमे अपराजित नामका राजा था। उसकी रानी विजयासे विनयश्री नामकी एक पुत्री थी ॥१०२–१०३॥ राजाने हस्तिशीर्ष नगरके राजा हरिषेणसे अपनी पुत्री विवाह दी। एक समय विनयश्रीने अपने पतिके साथ वरदत्त नामके मुनिको आहारदान दिया ॥१०४॥ किसी दिन वह भीतरी कमरेसे अपने पतिके साथ सो रही थी कि अगुरुधूपके धुॅएसे दोनोंकी मृत्यु हो गई और वह हैमवत क्षेत्रमें उत्पन्न हुई। वहाॅ एक पल्य वर्षोंतक भोग भोगकर वहाॅसे भी मरण कर ज्योतिषी देवोमे चन्द्रमाकी चन्द्रप्रभा नामकी रानी हुई जहाॅ उसकी अर्धपल्यकी आयु थी। वहाॅसे च्युत हो इसी भरत क्षेत्रके मगध देशमें शाल्मलिखण्ड ग्राममे जयदेव गृहस्थ और उसकी पत्नीसे पद्मदेवकी छोटी बहिन पद्मदेवी नामकी पुत्री हुई। उसने एक दिन वरधर्म नामके मुनिको नमस्कार कर बिन जाने फलोको कभी न खानेका व्रत ले लिया ॥१०५–१०८॥

एक समय चण्डबाण नामके एक भीलने उस ग्रामपर चढ़ाई कर दी और पद्मदेवीको कैद कर लिया तथा काम सेवन करनेकी इच्छासे अपनी पत्नी वनानेके लिए उसे तंग करने लगा

नेयेष शीलमेषा प्रपालयन्ती तमन्यदा रक्षः ।
प्रहितो राजगृहेशा सिंहरथेनाऽवधींदुग्रः ॥११०॥

तद्विगते विभ्रमन्ते जनाः सकिम्पाकतरुफलान्यद्य[१] ।
दिङ्मूढाः खलु पद्मा व्रतिनी नाश्नुतेऽध्वनि किमपि ॥१११॥

प्रत्याख्याय च तस्मिन् हैमवते पल्यजीविता जाता ।
संसेव्य तत्र सौख्यान्यन्ते मुक्त्वा ततश्चापि ॥११२॥ युग्मम् ।

देवी स्वयम्प्रभस्य स्वयम्प्रभा व्यन्तराऽमरेशस्य ।
द्वीपे स्वयम्प्रभगिरावभूत्स्वयम्भूरमणसंज्ञे ॥११३॥

मुक्त्वाऽतोऽस्मिन्भरते श्रीधरनृपतेर्जयन्तनगरेशः ।
श्रीमत्यां विमलश्री. सदृशी विमलाङ्गजा जज्ञे ॥११४॥

मलयेषु भद्रिलपुरे नृपाय साऽदायि मेघनिनदाय ।
प्रथितमसूत च सूनुं भूमितले मेघघोषाख्यम् ॥११५॥

पद्मावत्यार्याऽन्ते पत्यौ सा स्वर्गते विनिष्क्रम्य ।
आचाम्लवर्धमानं समुपोष्यान्ते समाराध्य ॥११६॥

कल्पे तु सहस्रारे देवेन्द्रस्याऽग्रगामिनी भूत्वा ।
त्रिगुणं[२]नवकानि पल्यान्याशीदमराङ्गनासौख्यम् ॥११७॥

आसीस्ततोऽवतीर्णाऽरिष्टपुरे त्वं हिरण्यनाभस्य ।
श्रीमत्यां कान्तसुता सुन्दरि पद्मावती प्रथिता ॥११८॥

शार्ङ्गिणमुपलब्धवती स्वयंवरे त्वं च सेत्स्यसीति ।
तथैव कथितेऽष्टावपि देव्यः परितुष्टुपुर्गणिनम् ॥११९॥

अन्येऽपि तदा यदवः स्वपूर्वजातीर्निशम्य सम्यक्त्वम् ।
गृहिधर्मं च गृहीत्वा नुनुवुर्गणिनं शिरोऽञ्जलयः ॥१२०॥

१. खादित्वा इत्यर्थः । २. नवपञ्चकपल्यानि इति हरिवंशपुराणे ।

॥१०९॥ परन्तु वह अपने शीलव्रतको पालन करती हुई उसकी पत्नी न बनी। किसी समय राजगृहके राजा सिंहरथने अपने बलवान् सैनिकको भेजकर उस भीलको मरवा डाला ॥११०॥ उसके मर जानेपर उसके अधीन लोग विषैले वृक्षोंके फल खाकर रास्ता भूल, भटकने लगे पर (अनजान फल न खानेका) व्रत धारण करनेवाली पद्मदेवीने रास्तेमे कुछ भी नहीं खाया ॥१११॥ इस प्रकार त्यागसे शरीर छोड़ हैमवत क्षेत्रमे भोगभूमिया हुई और एक पल्य तक जीवित रह अनेक सुखोंको भोगा। फिर वहाँसे मरकर स्वयम्भूरमण द्वीपके स्वयम्भू-रमण पर्वतपर व्यन्तरोंके इन्द्रकी स्वयम्प्रभा नामकी देवी हुई ॥११२-११३॥ फिर वहाँसे च्युत होकर इसी भरत क्षेत्रके जयन्त नगरमे राजा श्रीधर और रानी श्रीमतीसे विमल शोभावाली विमला नामकी पुत्री हुई ॥११४॥ उसका विवाह मलयदेशमे भद्रिलपुरके राजा मेघनादसे कर दिया गया। उससे जगत्मे प्रसिद्ध मेघघोष नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥११५॥ कुछ दिनोंके वाद विमलश्रीके पतिका स्वर्गवास हो गया इससे उसने पद्मावती आर्यिकाके समीप दीक्षा लेकर आचाम्लवर्धन नामक तपको करके अन्तमे आरा-धनाओंको आराधन कर सहस्रार स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणी हुई। और वहाँ उसने सत्ताईस पल्यकी आयु तक देवाङ्गनाओंके सुख भोगे ॥११६-११७॥ वहाँसे च्युत होकर अरिष्टपुरके राजा हिरण्य-नाभ और रानी श्रीमतीसे हे सुन्दरि! तुम पद्मावती नामकी सुन्दर पुत्री हुई हो और स्वयवरमे तुमने कृष्णको वरण किया। तुम्हारा भी मोक्षगमन उसी प्रकार होगा। ऐसा कहनेपर वे आठों ही देवियाँ प्रसन्न हो गणधरकी स्तुति करने लगीं ॥११८-११९॥

उस समय अन्य यादवोंने भी अपने पूर्व-जन्मके वृत्तान्त सुने और कुछने सम्यक्त्व धारण किया एवं कुछने श्रावक-व्रत

सर्वेऽपि ततः सभ्या वन्दित्वेशं स्वमन्दिराण्यगमन् ।
भव्यहिताय च भगवान्सगणो व्यहरत्पुनर्देशान् ॥१२१॥

पूर्ववदागत्य जिनं रैवतकाद्रौ सुरेन्द्रसन्मध्ये ।
उपविष्टमन्यदैवं प्रणम्य पप्रच्छ वलदेवः ॥१२२॥

वैश्रवणनिर्मितेयं द्वारवती कृष्णबाहुपरिपाल्या ।
अविनाशेवास्माकं भगवन्नन्तः कदा न्वस्याः ॥१२३॥

इति चोदितोऽथ नाथः प्राभाषत वारुणीनिमित्तेन ।
द्वीपायनेन दग्धा निरीक्ष्यते पूर्द्वादशाब्दे ॥१२४॥

कौशाम्बाऽख्याटव्यां जरेण प्रणश्यते हरिश्चान्ते ।
स्वाभ्री गतिं प्रविष्टः पुनश्च भवितेह तीर्थकरः ॥१२५॥

सिद्धार्थबोधितस्त्वं भ्रातृवियोगोत्थशोकमुज्झित्वा ।
षष्ठिद्वयमब्धीनां प्रव्रज्योग्रं तपः कृत्वा ॥१२६॥

दशसागरोपमायुर्भवितासि ब्रह्मकल्पराजान्ते ।
उत्सर्पिण्यां मुक्तस्ततोऽवतीर्णो भविष्यसि च ॥१२७॥

एवं जिनगणिवागमृतं पीत्वा शेषः[1] प्रणम्य भगवन्तम् ।
सभ्रातृदारसैन्यो निवृत्य नगरीं च समवीक्षत् ॥१२८॥

गणिनामेकादशकं नेमेश्च चतुः शतं तु पूर्वविदाम् ।
पञ्चदशकं यतीनां शतमवधिज्ञानिनामासीत् ॥१२९॥

विपुलमतिज्ञानवतां प्रज्वलितब्रह्मवर्चस्वानां च ।
शतमेव नवकमासीत्केवलिना च पञ्चदशकं तत् ॥१३०॥

---

१. वलदेवः ।

धारण किये। तथा हाथ जोड़ गणधरको नमस्कार किया ॥१२०॥ समवसरणमें उपस्थित अन्य सबलोग भी भगवान्‌को प्रणाम कर अपने अपने निवासस्थान गये और भगवान् भी संघसहित भव्य प्राणियोंके कल्याण करनेके लिए फिरसे अनेक देशोंमें भ्रमण करने लगे ॥१२१॥

एक समय भगवान् पहलेके समान ही गिरनार पर्वतपर आकर देवताओंके बीच ( समवसरणमें ) विराजमान थे। वहाँ बलदेवने भगवान्‌को प्रणामकर पूछा ॥१२२॥ कि हे भगवन्, कुबेरके द्वारा बनाई गई, तथा कृष्णकी भुजाओंसे परिपालित और हमलोगोंको अविनाश स्वरूप मालूम होनेवाली यह द्वारिका पुरी कब नष्ट होगी ? ॥१२३॥ इस प्रश्नपर भगवान्‌ने कहा कि तुम, आजसे बारहवें वर्षमें शराब पीकर मत्त यादवोंसे क्रोधित हुए द्वैपायन मुनिके द्वारा इस नगरीको भस्म हुई देखोगे ॥१२४॥ और कृष्ण कौशाम्बनामके वनमें जरत्कुमारके द्वारा मारे जायेंगे तथा मरकर नरकगति जायंगे और फिर भावी तीर्थंकर होंगे ॥१२५॥ और तुम सिद्धार्थ नामक देवसे संबोधित हो भाईके वियोगसे उत्पन्न शोकको छोड़ोगे और दीक्षा लेकर बासठ सागर-तक उग्र तप करोगे ॥१२६॥ एवं अन्तमे ब्रह्म स्वर्गके इन्द्र होवोगे जहाँ तुम्हारी आयु दश सागरकी होगी। फिर वहाँसे च्युत हो अगली उत्सर्पिणीमें मोक्ष जाओगे ॥१२७॥ इस तरह जिन भगवान् और उनके गणधरके वचनामृतको सुनकर बलरामने भगवान्‌को प्रणाम किया और अपने भाइयों, पत्नियों और सेनाके साथ लौटकर अपने नगरकी देखभाल करने लगा ॥१२८॥

भगवान् नेमिनाथके संघमें ग्यारह गणधर थे तथा पूर्वाङ्ग-वेत्ता चार सौ थे, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी मुनि थे, विपुलमतिज्ञान-के धारी तथा ब्रह्मतेजसे प्रकाशित मुनि नौ सौ थे तथा केवलियोंकी

एकादशकं तु शतं(११००)वैक्रियशक्त्या समन्वितयतीनाम् ।
अष्टौ शतान्यभूवन् प्रवादिदर्पच्छिदासीशः ॥१२१॥
आसीच्च शिक्षकाणामेकादशकं सहस्रमष्टशतम्(११८००) ।
अष्टादशकसहस्रा(१८०००)यतिपरिषदियन्तु संख्याता ॥१२२॥
चत्वारिंशद्गुणितं सहस्रमेकं(४००००)बभूव चार्याणाम् ।
एकं लक्षं(१०००००)गृहिणानुपासिकानां त्रिसंगुणं लक्षम्
(३००००००) ॥१२३॥

भव्यांस्ततो जिनेन्द्रः सकलं देशं विबोधयन्वर्षम् ।
सङ्घेन विहृत्याऽन्ते स्मारोहत्यूर्जयन्तगिरिम् ॥१२४॥

आषाढशुक्लपक्षे सप्तम्यां दशधनुःसमुत्तुङ्गः ।
षट्त्रिंशता यतीनां पञ्चशतेनापि साहस्रम् ॥१२५॥

त्रीण्यपि निरुध्य योगान् न योगितामेत्य पूर्वशर्वर्याम् ।
परिनिर्वृते जिनेन्द्रे विनाश्य कर्माण्यशेषाणि ॥१२६॥

देवेन्द्रास्तत्समये समेत्य सर्वेऽपि जिनतनोः पूजाम् ।
अत्यादृताः प्रचक्रुर्नानाविधगन्धमाल्याभिः ॥१२७॥

अग्नीन्द्रमौलिमणिजज्वलनेन तनुं तदा दग्ध्वा ।
गन्धोदकाऽक्षतैस्ते पुनश्च निर्वापयामासुः ॥१२८॥

कुलिशेन सहस्राक्षो लक्षणपङ्क्ति लिलेख तत्रेशः ।
भव्यहिताय शिलायामद्यापि च शोभते पूता ॥१२९॥
देवाश्चतुर्निकायाः सेन्द्राः कृत्वाऽन्तिमां जिनस्यैवम् ।
महिमां पवित्रहृदया जग्मुः सर्वे स्वलोकेभ्यः ॥१४०॥

स्वर्गाऽवतरणजन्मप्रव्रजनज्ञानलब्धिनिर्वृत्तिषु ।
नक्षत्रमभूच्चित्रा कल्याणकमङ्गलेष्वीशः ॥१४१॥
कौमारेऽपि त्रिशतीर्दिव्यैर्भोगैर्जिनः परिरराम ।
वर्षाणां सप्तशतीं न्यूनां विजहार केवली भूत्वा ॥१४२॥

संख्या पन्द्रह थी, विक्रियाऋद्धि-धारी मुनि ग्यारह सौ थे और प्रतिवादियोंके दर्दको नष्ट करनेवाले वादी मुनि आठ सौ, तथा शिक्षक मुनि ग्यारह सौ आठ थे। मुनियोंकी सभामें अठारह हजार मुनि थे तथा आर्यिकाएँ चालीस हजार, और श्रावक एक लाख तथा श्राविकाएँ तीन लाख थीं ॥१२९-१३३॥

वे जिनेन्द्र भगवान् इस तरह भव्य जीवोंको सकलधर्म अर्थात् मुनिधर्म और देशधर्म अर्थात् श्रावक धर्मका उपदेश देते हुए संघके साथ विहार करते थे। और अन्तमें गिरनार पर्वतपर आकर विराजमान हुए ॥१३४॥ वहाँ आषाढ़ शुक्ल सप्तमीके दिन पाँच सौ छत्तीस मुनियोंके साथ मन वचन और काय इन तीन योगोंका निरोधकर रात्रिके पूर्व प्रहरमें ही अयोगिपद अर्थात् मोक्षपद प्राप्त किया। सम्पूर्ण कर्मोंका विनाशकर जिनेन्द्र भगवान्‌के मोक्ष चले जानेपर वहाँ उस समय सभी इन्द्रोंने आकर अति आदर भावसे नाना प्रकारकी सुगन्धित माला आदिसे भगवान्‌के शरीरकी पूजा की ॥१३५-१३७॥ अग्निकुमार देवोंके इन्द्रने अपने मुकुट मणिसे उत्पन्न अग्निसे भगवान्‌के शरीरका अग्नि-संस्कार किया, फिर इन्द्र उसे सुगन्धित जल और अक्षत आदिके साथ (क्षीर सागरके जलमें) समर्पित कर आये ॥१३८॥ इन्द्रने भव्य जीवोंके हितके लिए वहाँ शिलापर अपने वज्रसे भगवान्‌के लक्षण (चिह्न) की रेखा बना दी। वह पवित्र रेखा आज भी सुशोभित हो रही है ॥१३९॥ इस प्रकार इन्द्रों सहित चारों निकायोंके देव भगवान्‌के अन्तिम कल्याणककी पूजासे अपने हृदयोंको पवित्रकर स्वर्गलोक चले गये ॥१४०॥ भगवान्‌के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष इन पाँचों मङ्गल कल्याणोंमें चित्रा नामका नक्षत्र था। उन्होंने कुमारावस्थामें तीन सौ वर्ष तक दिव्य भोग भोगे और कुछ कम सात सौ वर्ष केवली होकर विताये

वर्षाणां सप्तशतं त्र्यशीतिगुणितं सहस्रमेकं च ।
पञ्चाशदपि च तीर्थं नाथस्याऽभूदविच्छिन्नम् ॥१४३॥

भिन्नाऽञ्जनपुञ्जाभं प्रणीतनिर्वाणसत्पथमथैनम् ।
त्रैलोक्याऽर्चितचरणं नमामि नेमीश्वरं शिरसा ॥१४४॥

एवं मया महात्मा नामावलिकानिबन्धनेन नुतः ।
द्वाविंशो मे दिशतामर्हद्देवः शिवावासम् ॥१४५॥

चरितमिदं श्रवणीयं यो हि समासेन बद्धमार्याभिः ।
श्रावयते च शृणोति च लब्ध्वेव स लप्स्यते सिद्धिम् ॥१४६॥

इत्यरिष्टनेमिचरिते पुराणसंग्रहे भगवन्निर्वाणगमनो नाम
पञ्चमः सर्गः समाप्तः ॥५॥

---

और एक हजार सात सौ तेरासी वर्षोंतक भगवान्‌के तीर्थकाल का विच्छेद रहा ॥१४१-१४३॥

मैं उन नेमिनाथ भगवान्‌को शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ जिनने कि कर्ममलके समूहको नष्ट कर दिया है, जो निर्वाणरूपी सत्पथके प्रणेता हैं तथा जिनके चरणोकी तीनो लोक पूजा करता है ॥१४४॥ इस प्रकार मैंने उन महात्माकी नामावली पूर्वक स्तुति की वे बाईसवे तीर्थंकर अर्हन्तदेव मुझे मोक्षनिवास देवे ॥१४५॥ जो कभी संक्षेपसे आर्याछन्दमे रचित इस सुनने योग्य चरितको सुनता और सुनाता है, वह शीघ्र ही मोक्षपद पाता है ॥१४६॥

इस प्रकार पुराणसार सग्रहके नेमिचरितमें भगवान्‌का निर्वाण-गमन नामक पॉचवॉ सर्ग समाप्त हुआ ।

---

# श्रीपार्श्वनाथचरितम्

## प्रथमः सर्गः

देवासुरनरैर्वन्द्यं केवलज्ञानसम्पदम् ।
जिनेन्द्रं पार्श्वनामानं वन्दे मोक्षसुखप्रदम् ॥ १ ॥

सुधर्मस्वामिना प्रोक्तं जम्बूनाम्ने महात्मने ।
चरितं पार्श्वनाथस्य भक्त्या वक्ष्ये समासतः ॥ २ ॥

श्रद्धया पापनाशार्थमारभ्य दशमाद् भवात् ।
पुराणं स्फुटशब्दार्थैः कथितं श्रूयतां बुधैः ॥ ३ ॥

द्वीपेऽस्मिन्भारते राष्ट्रे सुरम्ये पोदनापुरे ।
राजाऽरविन्दनामाऽभूदरविन्ददलेक्षणः ॥ ४ ॥

स दीप्त्या भानुवत् कान्त्या चन्द्रवद् गिरिराजवत् ।
स्थैर्येण कामवद्भूत्या बुद्ध्या च गुरुसन्निभः ॥ ५ ॥

रूपलावण्यसौभाग्यकलागुणविभूषिता ।
श्यामला तस्य विख्याता कान्ताऽभूद्रतिसन्निभा ॥ ६ ॥

ब्राह्मणो विश्वभूत्याख्य पुरोधास्तस्य भूपतेः ।
अनुन्दरीत्यभूदस्य ब्राह्मणी चित्तहारिणी ॥ ७ ॥

कमठो मरुभूतिश्च पुत्रावास्तां तयोर्मतौ ।
मरुभूतेरभूज्जाया चारुरूपा वसुन्धरा ॥ ८ ॥

वारुणी कमठस्याऽभूद्भार्या द्विजकुलोद्भवा ।
तेषां काले गते सम्यक्सुखेन सुहृताश्चिरम् ॥ ९ ॥

# श्रीपार्श्वनाथचरित

## प्रथम सर्ग

मै पार्श्वनाथ जिनेन्द्रको नमस्कार करता हूँ। वे अनेक देवोसे वन्दनीय, केवलज्ञान-सम्पन्न तथा मोक्ष-सुखको देनेवाले हैं ॥ १ ॥ गणधर सुधर्मस्वामीने महात्मा जम्बू स्वामीसे भगवान् पार्श्वनाथ-का चरित कहा था। भक्तिवश मैं उसे संक्षेपमे कहता हूँ ॥ २ ॥ दशवें भवसे प्रारम्भ कर इस पुराणको स्फुट शब्दोंमे, पापोंकी शान्तिके लिए ही श्रद्धावश मैंने कहा है। बुद्धिमान लोग इसे सुनें ॥ ३ ॥

इसी जम्बू द्वीपमें भरत क्षेत्रके सुरम्य नामके देशमें पौदनापुर नामका नगर है। वहाँ कमलोंके समान नेत्रवाला अरविन्द नामका राजा था ॥ ४ ॥ वह अपनी प्रभासे सूर्यके समान, कान्तिसे चन्द्रमाके समान, स्थिरतासे मेरु पर्वतके समान, स्नेहसे कामके समान तथा बुद्धिसे बृहस्पतिके समान था ॥ ५ ॥ उसके श्यामला नामसे प्रसिद्ध रानी थी, जो रूप, लावण्य, सौभाग्य, कला तथा गुणोंसे ऐसी मालूम पड़ती थी जैसे रति हो ॥ ६ ॥

उस राजाका विश्वभूति नामका ब्राह्मण पुरोहित था, जिसकी चित्त हरनेवाली ब्राह्मणी पत्नीका नाम अनुन्दरी था। उन दोनोके कसठ और मरुभूमि नामके दो पुत्र थे। मरुभूमिको सुन्दर रूप-वती वसुन्धरा नामकी पत्नी थी तथा कमठको ब्राह्मण कुलमे उत्पन्न वारुणी नामकी पत्नी थी। उन सबका समय पूर्व पुण्यके कारण बहुत समयतक अच्छी तरह सुखसे व्यतीत हुआ ॥७–९॥ विश्व-

मृत्वा सुपुत्रयोः श्रेष्ठं महीपालोऽनुमोदनात् ।
विश्वभूतिः स्वसन्ताने मरुभूतिमतिष्ठिपत् ॥१०॥

वित्त[1]धान्यधनैश्वर्यरूपबुद्धिसमन्वितः ।
वल्लभो भूमिपालस्य मरुभूतिरभूत्सदा ॥११॥

आज्ञप्तुं वज्रधीराऽख्यं नृपं राज्ञा गते सह ।
मरुभूतौ पुरीतोऽन्यविषयं कमठोऽपि च ॥१२॥

पश्चान्निवार्यमाणोऽपि निर्लज्जो दान्धर्वः खलु ।
रेमे च वसुन्धरया सार्धं कामेन मोहितः ॥१३॥

युद्धे जित्वाऽरविन्दश्च वज्रधीरं नृपं पुनः ।
आगत्य दुष्टतां श्रुत्वा चुक्रोध कमठस्य सः ॥१४॥

वसुन्धरादुराचाराद्राज्ञा निष्कासितः पुनः ।
तापसानामसौ दीक्षां जगृहे जन्मवर्द्धनीम् ॥१५॥

राज्ञा निवार्यमाणोऽपि मरुभूतिः स्वकर्मणा ।
ज्येष्ठं द्रष्टुं प्रयाति स्म मार्गयंस्तत्प्रदेशकम् ॥१६॥

मरुभूतेर्वरस्नेहात्क्षन्तव्यमिति पादयोः ।
प्रणतस्योत्तमाङ्गेऽसौ कमठः क्षिप्तवाञ्छिलाम् ॥१७॥

आर्त्तध्यानेन मृत्वाऽसौ सल्लकीगहने वने गजः ।
वज्रघोषोऽभवन्नाम्ना यूथेश्वरनायकः ॥१८॥

जटानां छेदनं कृत्वा व्याधितस्तापसैश्च सः ।
स्तेनो भूत्वा नरं व्यापाद्यन्त्या युद्धे ममार च ॥१९॥

तन्निमित्तेन पापेन जातः सर्पः कुक्कुटनामकः ।
कमठोऽकुक्कुटा चापि वानरी पापतोऽभवत् ॥२०॥

---

१. 'मिथ्यागमरतो' इति पाठः ।

भूतिने राजाकी सलाहसे, अपनी मृत्युके बाद अपने दोनो पुत्रोमेसे योग्य पुत्र मरुभूतिको अपने पदपर रख दिया ॥१०॥ वह मरुभूति भोग, धन-धान्य, ऐश्वर्य, रूप तथा बुद्धिसे राजाको सदा प्यारा था ॥११॥

एक समय, वज्रधीर नामके राजाको दण्ड देनेके लिए, मरुभूति अपने राजाके साथ नगरीसे बाहर दूसरे देश गया हुआ था कि उसके भाई निर्लज्ज कमठने कामके वशीभूत हो, अपने मित्रोके द्वारा रोके जानेपर भी अपने छोटे भाई मरुभूतिकी पत्नी वसुन्धराके साथ काम सेवन किया ॥१२–१३॥ इधर जब राजा अरविन्द अपने शत्रु वज्रधीर नामक राजाको युद्धमें जीतकर लौटा तो वह कमठकी दुष्टताको सुन उसपर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और वसुन्धराके साथ दुराचार करनेके कारण उसे राज्यसे निकाल दिया। तब उसने संसारको बढ़ानेवाली, पाखण्डी साधुओकी दीक्षा ले ली ॥१४–१५॥

एक समय मरुभूति, राजासे रोके जानेपर भी अपने कर्मोदय-के वशीभूत हो, अपने बड़े भाईको देखनेकी इच्छासे उस स्थानको ढूँढ़ता हुआ वहाँ पहुँचा ॥१६॥ पर ज्यो ही वह बड़े स्नेहके साथ 'क्षमा कीजिए' ऐसा कहता हुआ भाईके पैरोंमे झुका त्यो ही कमठने उसके सिरपर एक चट्टान दे मारी। इससे मरुभूति आर्त-ध्यानसे मरा और सल्लकी नामके वनमे अनेको हाथियोंका मुखिया वज्रघोष नामका हाथी हुआ ॥१७–१८॥ कमठके इस निर्दय व्यव-हारसे वहाँके तपस्वियोने उसकी जटाओको मुड़ाकर आश्रमसे निकाल दिया। वह भी चोर बनकर व्याधों (भीलों) के साथ चोरी करता फिरा और युद्धमें मारा गया ॥१९॥ तथा उसी सल्लकी वनमें कुक्कुट जातिका सर्प हुआ और मरुभूति एवं कमठकी माता अनुन्दरी पापकर्मसे वहाँ ही वानरी हुई ॥२०॥

स्वयम्प्रभगुरोः पार्श्वे ह्यरविन्दनृपोऽपि च ।
सोपानं स्वर्गमोक्षस्य धर्मं जीवहितं सताम् ॥२१॥

श्रुत्वा नरेन्द्रसंज्ञाय राज्यं दत्त्वा स्वसूनवे ।
दीक्षित्वा त्ववधिज्ञानं सम्प्राप तपसः फलात् ॥२२॥

दर्शनज्ञानचारित्रं तपोभिः सह सन्ततम् ।
चरित्वा सुचिरं धीमानरविन्दमहामुनिः ॥२३॥

सम्मेदं वन्दितुं सार्धं सार्थेन गतवानसौ ।
सल्लक्याख्यमहाटव्यां सार्थोऽपि व्यमुचन्महान् ॥२४॥

दृष्ट्वा सः कुञ्जरः सार्थमश्वगोगर्दभान् नरान् ।
खादान् हत्वा बहून् सार्थं द्रावयामास सर्वतः ॥२५॥

उपसर्गान्तकं दृष्ट्वा यावन्नाशं प्रयाति सः ।
आहारं च शरीरं च तावत्त्यक्त्वा मुनीश्वरः ॥२६॥

कायोत्सर्गः स्थितः सम्यक् धर्मध्यानपरायणः ।
महाधैर्यं गजो दृष्ट्वा पुण्याज्जातिस्मरोऽभवत् ॥२७॥ युग्मम् ।

कृपया वज्रघोषस्य धर्मं चक्रौ मुनीश्वरः ।
उत्कृष्टश्रावको जातः श्रुत्वा धर्मं सुखाकरम् ॥२८॥

पापात्तिर्यग्गतिं प्राप्य रोधैश्च क्षुत्तृषाभयैः ।
दुःखमुग्रं चिरं कालमज्ञानेनासवानहम् ॥२९॥

इति मत्वाऽभवत्त्रस्त सर्वं देशव्रतैः सह ।
सम्यक्त्वं प्रोपदे सम्यक् चचार सुचिरं गजः ॥३०॥

प्रासुकाशनपानाभ्यां कृशाङ्गः कुञ्जरोत्तमः ।
वेगवत्यास्तटे पङ्कमुत्तरीतुं न शक्तवान् ॥३१॥

इधर राजा अरविन्दने भी, स्वयंप्रभ मुनिराजके पास स्वर्ग और मोक्षकी सीढ़ीके समान, एवं प्राणियोंके हितकारी सत्पुरुषोंके धर्मको सुनकर तथा अपने नरेन्द्र नामके पुत्रको राज्य दे, जिन-दीक्षा ले ली और तपस्याके फलसे उसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ ॥२१-२२॥ वे बुद्धिमान् महामुनि अरविन्द तपके साथ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका निरन्तर बहुत समयतक आराधन करते रहे ॥२३॥ फिर एक समय संघके साथ सम्मेद-शिखरकी वन्दना करने चले। रास्तेमें सल्लकी नामके घोर जंगलमें उनका संघसे साथ छूट गया। वहाँ उस वज्रघोष नामके हाथीने संघको देखकर उसके घोड़े, बैलों तथा गदहोंको मार डाला तथा बहुत-सी खाद्य-सामग्री नष्ट कर दी। इससे संघ यहाँ-वहाँ बिखर गया ॥२४-२५॥ उन मुनिराजने इस प्रकारके घोर उपसर्गको देखकर प्रतिज्ञा की कि जबतक उसका अन्त नहीं होता तबतक आहार व शरीरसे ममत्वका त्याग है। और कायोत्सर्ग धारण-कर धर्मध्यानमें अच्छी तरह लवलीन हो गये। तब उस हाथीको उन महाधीर मुनिको देखकर पुण्य कर्मके उदयसे जातिस्मरण हो गया ॥२६-२७॥ उन मुनिराजने वज्रघोषपर दयाकर धर्मो-पदेश दिया। और वह भी सुखदायक धर्मश्रवण कर उत्कृष्ट श्रावक बन गया ॥२८॥ तथा सोचने लगा कि मैंने पापके कारण यह तिर्यञ्च गति पाई है जहाँ अज्ञानवश भूख, प्यास और भयकी बाधाओंसे चिरकालतक बहुत दुःख भोगे हैं ॥२९॥ यह समझकर वह संसारसे भयभीत हो गया और श्रावकके सभी व्रतोंके साथ सम्यग्दर्शन धारण कर प्रोषधोपवास करता हुआ वह हाथी विच-रण करने लगा ॥३०॥

एक समय प्रासुक भोजन पानसे क्षीण शरीर वह हाथी पानी पीनेके लिए वेगवती नदीके किनारे गया पर वहाँ ही कीचड़में

क्षीणवेषं तकं दृष्ट्वा सर्पः कुक्कुटसंज्ञकः ।
जघान पूर्ववैरेण रुषा तमपि वानरी ॥३२॥

कृत्वा सल्लेखनां नागो धर्मध्यानपरायण ।
इन्द्रचापस्य भिन्नाभाः निरभ्रे गगने यथा ॥३३॥

सम्भवन्ति तथा सद्यः सम्भूयाऽवधिना सह ।
स्वयम्प्रभविमानेऽभूत्सहस्रारे सुरोत्तमः ॥३४॥

मूत्रादिहीनसद्देहो निर्मलाऽम्बरभूषणः ।
नित्ययौवनसम्पन्नो नीरोगत्वेन संयुतः ॥३५॥

सम्यक्त्वं चेन्द्रियैरिष्टसौख्यान्यनुभवन् सदा ।
हीनोऽवमृत्युना रेमे पुण्यैः पूर्वभवार्जितै ॥३६॥

दश[1]सप्ताऽर्णवं कालं शशिप्रभसुरेश्वरः ।
तत्राऽष्टभिर्गुणैर्युक्तो देवीभिर्बुभुजे सुखम् ॥३७॥

पञ्चमे नरके भूत्वा कुक्कुटोरगकोऽपि च ।
दश सप्ताऽर्णवं कालं दुःखं तु बुभुजे महत् ॥३८॥

भग्नः पिष्टो हतो दग्धो नारकैश्च विपाटित ।
ताडितश्छिन्नभिन्नश्च प्रापद् दुःखं सदाऽघतः ॥३९॥

सर्पशार्दूलसिंहाद्यैर्भक्षणात्कुट्टनात् वनैः ।
उल्मुकैस्ताडनाद् घोरदन्तानां दारणात्तथा ॥४०॥

शिरसः क्रकचैश्छेदात्तीव्रमुत्पाटनात्पुनः ।
जिह्वायाः सन्ततं दुःखं बुभुजेऽर्जितपापतः ॥४१॥

---

१. षोडशाब्धि इति उत्तरपुराणे ।

फँस गया और उसमेंसे निकल न सका ॥३१॥ क्षीणवेष उस हाथीको देखकर कुक्कुट नामके सर्पने पूर्व वैरके कारण क्रोध-पूर्वक उसे काट लिया और वानरीने उस सर्पको काट दिया॥३२॥ तब धर्मध्यानमे लवलीन हो उस हाथीने सल्लेखनापूर्वक मरण किया और जिस प्रकार मेघरहित आकाशमें इन्द्रधनुषके नाना रंग सहसा प्रकट हो जाते हैं उसी तरह अवधिज्ञानसे संयुक्त हो वह सहस्रार स्वर्गके स्वयम्प्रभ विमानमें उत्तम देव हुआ। वहाँ उसकी देह मूत्रादिसे रहित थी तथा वह स्वच्छ आभूपण पहने हुए था। उसका शरीर सदा यौवनयुक्त एवं नीरोग था। इन्द्रियोंसे इष्ट सुखोका अनुभव करता हुआ वह सम्यक्त्वसम्पन्न जीव अकाल मृत्युसे रहित था तथा पूर्व जन्ममे अर्जित पुण्यके कारण सुखपूर्वक रमण करने लगा ॥३३–३६॥ अणिमा आदि आठ गुणोसे युक्त यह शशिप्रभ नामका देव, देवियोके साथ सुख भोगता हुआ सत्तरह सागर तक वहाँ निवास किया ॥३७॥

कुक्कुट नामका सर्प भी वहाँसे मरकर पाँचवे नरकमें गया और वहाँ सत्तरह सागर तक अनेक प्रकारके दुःख भोगता रहा ॥३८॥ वहाँ नारकी लोग उसके अङ्ग-भङ्ग करते, उसे पोस डालते, मार डालते, जला देते एवं फाड़ डालते थे। इस तरह अपने पापकर्मके उदयसे वह निरन्तर मारा पीटा तथा छिन्न-भिन्न होता हुआ अनेक दुःख पाने लगा ॥३९॥ वहाँ उसे सर्प, शार्दूल और सिह आदि खा जाते थे तथा घनोंसे कूटा जाता था, जलती हुई लकड़ी (लूकाठों) से मारा जाता था तथा वड़े-वड़े दाँतोके वीच उसके टुकड़े-टुकड़े किये जाते ते। आरेसे उसका सिर छेदा जाता था तथा जीभ उखाड़ ली जाती थी, इसलिए पूर्व संचित पापोसे उसने निरन्तर अनेक दुःख भोगे ॥४०–४१॥

उधर वह शशिप्रभ देव, सहस्रार स्वर्गसे च्युत हो, पुष्करार्ध

पुष्करद्वीपपूर्वस्मिन्विदेहे रजताऽचले ।
विषये मङ्गलावत्यां तिलोत्तमपुरं त्वभूत् ॥४२॥

विद्युद्वेगोऽभवत्खेन्द्रः खेचरी तस्य विश्रुता ।
विद्युद्वेगा सहस्राराच्च्युत्वा देवः शशिप्रभः ॥४३॥

रश्मिवेगोऽभवत्पुत्रस्तयोर्विख्यातसद्गुलः ।
रूपलावण्यकान्तित्वकलागुणसमन्वितः ॥४४॥

वायुवेगेति च ख्याता तस्य देवी तया सह ।
भोगाननुबभूवेष्टान् सुरवद् देवकन्यया ॥४५॥

यशोधरगुरोः पार्श्वे विद्युद्वेगमहीपतौ ।
श्रुत्वा धर्मं सुनिर्वेदाद्राज्यं दत्त्वा स्वसूनवे ॥४६॥

निष्क्रान्ते रश्मिवेगोऽपि भुक्त्वा राज्यश्रियं चिरम् ।
श्रेष्ठं गुणधरं नाम्ना श्रित्वाऽऽचार्यं तपोऽधिकम् ॥४७॥

अर्चयित्वा वरं धर्मं श्रुत्वा निर्वेदमागतः ।
दत्त्वा सुताय राज्यं स्वं निष्क्रान्तो बहुभूमिपैः ॥४८॥

कृत्स्नव्रतानि संगृह्य पञ्चाचारे स्वशक्तितः ।
चचार सुचिरं पुण्यादधीत्य परमागमम् ॥४९॥

अथ कुक्कुटसर्पोऽपि पुष्करद्वीपपर्वते ।
हेमाऽख्ये नरकाच्च्युत्वा भीमस्त्वजगरोऽभवत् ॥५०॥

रश्मिवेगमुनिर्धीमान् घोरवीरतपश्चरन् ।
तस्मिन्नेव गिरौ सम्यक्कायोत्सर्गं समास्थितः ॥५१॥

तं दृष्ट्वा सन्मुनिं धीरं धर्मध्यानपरायणम् ।
क्षुधया चापि वैरेण सहसाऽजगरोऽगिलत् ॥५२॥

सम्यक् क्षमापरो भूत्वा कृत्वा संन्यसनं परम् ।
आराध्याऽऽराधनां चापि देवः कल्पेऽच्युतेऽभवत् ॥५३॥

द्वीपके पूर्व विदेहमे विजयार्ध पर्वतके मंगलावती देशमे, तिलोत्तम-पुरके राजा विद्युद्वेग विद्याधर और उसकी रानी विद्युद्वेगा विद्याधरीसे रश्मिवेग नामका पुत्र हुआ। वह अपने उत्तम बलके लिए प्रसिद्ध था तथा रूप, लावण्य, शोभा, कला आदि गुणोसे युक्त था ॥४२-४४॥ उसकी रानीका नाम वायुवेगा था। उसके साथ वह नाना प्रकारके इष्ट भोग भोगता था जैसे कि देवाङ्गनाओके साथ देव लोग भोगते हैं ॥४५॥

एक समय राजा विद्युद्वेगने यशोधर नामक मुनिसे धर्मोपदेश सुनकर संसारसे विरक्त हो अपने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा ले ली। रश्मिवेगने भी बहुत समयतक राज्य-लक्ष्मीका उपभोग कर, एक समय गुणधर नामके एक श्रेष्ठ तपस्वी मुनिराजके पास जाकर उनकी पूजा की और उनसे धर्मोपदेश सुनकर वह विरक्त हो गया तथा अपने पुत्रको राज्य देकर बहुतसे राजाओंके साथ दीक्षित हो गय। ॥४६-४८॥ तथा मुनियोके महाव्रतोको धारण कर और पुण्योदयसे द्वादशांग वाणीका अध्ययन कर, अपनी शक्तिपूर्वक पञ्च आचारो का पालन करता हुआ बहुत समयतक विचरण करने लगा ॥४९॥

इधर वह कुक्कुट सर्पका जीव नरकसे निकलकर पुष्करार्ध द्वीपके हेम पर्वतपर एक भयङ्कर अजगर हुआ ॥५०॥ एक समय वे प्रज्ञावान् रश्मिवेग मुनिराज घोर वीरतपस्या ( सर्वतोभद्र आदि व्रत ) करते हुए उसी पर्वतपर कायोत्सर्ग धारण कर निश्चल भावसे खड़े थे ॥५१॥ उस समय वहाँ धर्मध्यानमें लवलीन उन धैर्य-शाली मुनिराजको उस अजगरने देखा तथा भूखसे और पूर्व जन्म-के बैरके कारण उन्हें एकदम निगल गया ॥५२॥ वे मुनिराज उस समय उत्तम क्षमासे युक्त थे तथा अच्छी तरह संन्यास धारणकर चारों आराधनाओका आराधन कर अच्युत स्वर्गमें देव हुए॥५३॥ वहाँ उनका नाम विद्युत्प्रभ देव था जो शुभंकर विमानका स्वामी था जिसकी बाईस सागरकी आयु थी, तथा उक्त तपके कारण

शुभङ्करविमानेशो नाम्ना विद्युत्प्रभः सुरः ।
द्वाविंशतिसमुद्रायुर्भूत्वा सत्तपस. फलात् ॥५४॥
अष्टाभिश्च गुणै. सम्यग् अणिमाद्यैः समायुत. ।
अप्सरोभि. प्रियान्भोगान् बुभुजे देवपूजित. ॥५५॥
अर्जयित्वा महत्पापं बृहद्गात्रोरगोऽपि च ।
नरके पञ्चमे भूत्वा दश सप्त च सागरान् ॥५६॥
क्षेत्रजादि महादु.खं दुर्गन्धिक्षुत्तृषाभयः ।
छेदनादहनाद्यं च बुभुजे तत्र सन्ततम् ॥५७॥
जम्बूद्वीपविदेहेषु सीतोदाया उदक्तटे ।
विषये गन्धमालिन्यां वीतशोकाऽभवत्पुरी ॥५८॥
वज्रधीरोऽभवद्राजा विजया तस्य वल्लभा ।
कल्पाच्च्युत्वाऽच्युता देवः पुण्यात्पुत्रस्तयोरभूत् ॥५९॥
वज्रनाभिरसौ नाम्ना रूपसौभाग्यसद्गुणैः ।
शुक्लपक्षेन्दुवत्सार्द्धं सुखेन ववृधे प्रियः ॥६०॥
सकलविषया राज्यं चायुर्यशो वलं बुद्धय
सुरपतिधनुर्मेघोल्कावत्सदा खलु नश्वरा ।
कटुकफलदा. पाके भोगास्तथापि च दुर्लभा
इति वरमति. सम्यग्ध्यात्वा मुहुर्मुहुरादरात् ॥६१॥
धर्मं संश्रुत्य सम्यग्जिनवरगदितं मोक्षसत्सौख्यहेतुं
प्राव्राजीद्वज्रवीरो बहुनृपसहितो भोगनिर्वेदयुक्त ।
पुत्रं सद्वज्रनाभि प्रवरगुणयुतं स्थापयित्वा स्वराज्ये
पुण्याढ्यानां हि राज्यं भवति धनसुख ज्ञानसौख्यं तपश्च ॥६२॥

इति पार्श्वनाथचरिते पुराणसारसंग्रहे वज्रनाभिराज्यलाभो नाम
प्रथम सर्ग समाप्तः ॥१॥

---

अणिमा आदि आठ ऋद्धियोसे युक्त था, एवं देवोसे पूजित हो देवाङ्गनाओके साथ उसने नाना प्रकारके प्रिय भोगोको भोग ॥५४–५५॥

उस विशालकाय सर्पने ऐसा कर बहुत बड़ा पाप क ाया और पॉचवे नरकमें फिर जाकर सत्तरह सागरकी आयु पाई ॥५६॥ वहाँसे उसने निरन्तर ही नरक सम्बन्धी क्षेत्रज आदि सहादु.खोको, एवं दुर्गन्धि, भूख, प्यास, भय, छेदन, भेदन, दहन आदि कष्टोको भोगा ॥५७॥

इधर अच्युत स्वर्गसे च्युत हो वह देव पुण्योदयसे इसी जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदीके उत्तर तटपर गन्ध-मालिनी देशकी वीतशोका नगरीमें, राजा वज्रवीर और रानी विजयासे पुत्र हुआ। उसका नाम वज्रनाभि था तथा रूप, सौभाग्य आदि सद्गुणोसे युक्त था तथा सबोको प्यारा वह शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान सुखपूर्वक बढ़ने लगा ॥५८–६०॥

एक समय उत्तम मतिवाले राजा वज्रवीरने ससारके सभी विषय-भोगोको–राज्य, आयु, यश, शक्ति एव बुद्धि आदिको–इन्द्रधनुष, शरत्कालीन मेघ तथा उल्कापातके समान शीघ्र ही विनाशशील और भोगोको विपाककालमें कटु फल देनेवाला एवं प्राप्त करनेमे दुर्लभ मानकर वैराग्य भावनाका श्रद्धासे बार बार अच्छी तरह आराधन किया। तथा मोक्षके सच्चे सुख देनेवाले, जिनेन्द्र भगवान्‌से कहे गये धर्मोपदेशको सुनकर भोगोसे विरक्त हो गया और अपने उत्तम गुणवाले श्रेष्ठ पुत्र वज्रनाभिको राज्यपद देकर अनेक राजाओके साथ दीक्षा ले ली। ठीक ही है कि पुण्य-वानोको ही राज्य, धनसुख, ज्ञानसुख एवं तप मिलता है ॥६१–६२॥

इस प्रकार पुराणसारसग्रहके पार्श्वनाथचरितमे वज्रनाभिको राज्य-प्राप्ति नामका प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥

---

## द्वितीयः सर्गः

मण्डलीकनृपः पूर्वं वज्रनाभिरभूत्पुनः ।
सम्प्राप्य चक्रवर्त्तित्वं राज्यं चक्रे सुपुण्यतः ॥१॥

चक्रं खड्गो मणिश्चर्म दण्डश्छत्रं च काकिणी ।
सेनानी च गृहीभाश्वयोषित्तक्षपुरोधसः ॥२॥

कालः पद्ममहाकालो नैसर्प्यः पाण्डुपिङ्गलौ ।
सर्वरत्नमहाशंखौ निधयो माणवोऽपि च ॥३॥

चतुर्दशैव रत्नानि निधयश्च नवाऽपि च ।
षोडशैव सहस्राणि गणदेवाश्च संश्रिताः ॥४॥

षण्णवत्या सहस्रैश्च देवीभिर्नित्यसेवित' ।
द्वात्रिंशद्भिः सहस्रैश्च रेमेऽसौ राजभिस्तथा ॥ ५ ॥

दशाङ्गभोगसंयुक्तं कृत्वा राज्यं ततोऽन्यदा ।
वृक्षनाशादनित्यत्वं विदित्वा भोगसम्पदाम् ॥ ६ ॥

क्षेमङ्करजिनस्याऽन्ते श्रुत्वा धर्मं महागुणम् ।
दत्वा राज्यं गुणाढ्याय सूनवे वज्रबाहवे ॥ ७ ॥

निर्वेदात्सह दीक्षित्वा भूमिपै पञ्चभि. शतैः ।
सम्यक्त्वज्ञानचारित्रक्षमादमयुतोऽभवत् ॥८॥

द्विषड्विधं तथा कुर्वन् विहृत्य सुचिरं महीम् ।
विपुलाऽख्यगिरौ पश्चात्कायोत्सर्गं प्रपेदिवान् ॥९॥

निर्गतो नरकाद् घोराद् वृहत् गात्रोरगश्चिरम् ।
भ्रान्त्वा संसारकान्तारे पश्चात्स विपुलाऽचले ॥१०॥

## द्वितीय सर्ग

वह वज्रनाभि पहले मण्डलीक राजा था। फिर अपने विशेष पुण्यसे चक्रवर्ती पद पा राज्य करने लगा ॥ १ ॥ उस चक्रवर्तीको निम्न प्रकारकी विभूतियाँ उस समय प्रकट हुईं। ये चौदह रत्न थे जैसे कि चक्र, तलवार, मणि, चर्म, दण्ड, छत्र और काकिणी ( ये सात अजीव रत्न ) तथा सेनापति, गृहपति, गजपति, अश्व, स्त्री, स्थपति और पुरोहित ( ये सात जीव रत्न )। नव निधियाँ थीं जैसे कि काल, पद्म, महाकाल, नैसर्प्य, पाण्डु, पिङ्गल, सर्वरत्न, महाशंख और माणव। वह चक्रवर्ती सोलह हजार गण देवताओं और छ्यानवे हजार रानियोंसे नित्य सेवित था तथा बत्तीस हजार राजाओंके साथ आनन्दसे रहता था ॥२-५॥ तथा दश प्रकारके भोगोंसे युक्त हो राज्य करता रहा। एक समय एक वृक्षका नाश होते देख उसे संसारकी भोगोपभोग सम्पत्तियोंमें अनित्य भावनाका बोध हो गया ॥ ६ ॥ और क्षेमङ्कर मुनिराजके पास महागुणशाली धर्मोपदेशको सुनकर अपने गुणी पुत्र वज्र-बाहुको राज्य दे दिया और विरक्त होकर पाँच सौ राजाओंके साथ दीक्षा ले ली और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र एवं क्षमा और दमसे युक्त हो गया। उस वज्रनाभिने १२ प्रकार-का तप कर बहुत समयतक पृथिवीमें विहार किया। एक समय विपुल नामके पर्वतपर कायोत्सर्ग धारण कर खड़ा हो गया ॥७-९॥

इधर वह अजगरका जीव भी भयङ्कर नरकसे निकलकर भववनमें घूमता फिरा और उसी विपुल पर्वतपर अति निन्दित

व्याधः कुरङ्गको नाम्ना भूत्वा निन्दितरूपकः ।
तं दृष्ट्वा सन्मुनिं वैरान्निजघान बृहच्छरैः ॥११॥

क्षमापरो महाधैर्यो धर्मध्यानरतो मुनि. ।
कृत्वा संन्यसनं तस्मिन्नाराधितचतुष्टयः ॥१२॥

ग्रैवेयके सुभद्राख्ये ललिताङ्गः सुरोऽभवत् ।
सार्धं त्ववधिना पुण्यात्सप्तविंशतिसागरान् ॥१३॥

कल्पवासित्वदेवानामनन्तगुणितं सुखम् ।
प्राप्याऽहमिन्द्रतां सौख्यं बुभुजे कामवर्जित. ॥१४॥

निष्कारण्यादसौ व्याध सप्तमे नरके भृशम् ।
बुभुजे तीव्रदु.खानि सप्तविंशतिसागरान् ॥१५॥

पापान्निरन्तरं घोरं क्षेत्रजं देहसम्भवम् ।
परस्परोद्भवं दु खं बुभुजे चित्तजं च स. ॥१६॥

जम्बूद्वीपविदेहेषु सीताया उत्तरे तटे ।
देशोऽभवत्सुकच्छाख्यां पुरं पद्मपुरं वरम् ॥१७॥

वज्रबाहुनरेन्द्रोऽस्मिन्देवी तस्य प्रभङ्करा ।
अहमिन्द्रस्ततश्च्युत्वा पुण्यात्पुत्रस्तयोरभूत् ॥१८॥

हेमाङ्गद इति ख्यातो रूपसौभाग्यसद्गुणै ।
सुदन्ता तस्य कान्ताऽऽसीद्रूपेण रतिसन्निभा ॥१९॥

दिव्यान्भोगांस्तया सार्द्धं पञ्चेन्द्रियमनःप्रियान् ।
बुभुजे सुदशा सार्धं सुरवत् पुण्यतः सदा ॥२०॥

प्राव्राजीद्वज्रबाहुश्च राज्यं दत्त्वा स्वसूनवे ।
हेमाङ्गदोऽपि सद्राज्यं लब्ध्वा नेयविनाशनात् ॥२१॥

निवाणालानि यत्वमन्यदा मेघपंलयन् ।
तथा निपात्यादृश्यं किंपाकफलवच्च न ॥२२॥ सुम्लन् ।

रूपवाला कुरङ्ग नामका भील हुआ तथा उन मुनिको देखकर वैर भावसे बड़े पैने वाणोसे उन्हें छेद किया ॥१०–११॥ तब क्षमाशील, महाधैर्यवान्, धर्मध्यानमें लवलीन उन मुनिराजने संन्यासको धारण कर चार आराधनाओका आराधन किया और प्राण छोड़कर सुभद्र नामके मध्यम ग्रैवेयकमे ललिताङ्ग नामका देव हुआ। और पुण्योदयसे अवधिज्ञानसे संयुक्त हो सत्ताईस सागर तक कल्पवासी देवोसे अनन्तगुणे सुखको पाकर वासनारहित अहमिन्द्र पदका सुखपूर्वक भोग किया ॥१२–१४॥ तथा वह भील भी करुणाहीनताके कारण सातवें नरकमे गया और सत्ताईस सागर तक अनेक प्रकारके तीव्र भोग भोगे। वहाँ उसे सदैव, क्षेत्र सम्बन्धी, देहसे उत्पन्न, मानसिक एवं आपसमें दूसरे नारकियोसे उत्पन्न नाना प्रकारके घोर दुःख भोगने पड़े ॥१५–१६॥

अथानन्तर जम्बू द्वीपके विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर तट-पर सुकच्छा नामके देशमे पद्मपुर नामका उत्तम नगर था। वहाँ स्वर्गसे च्युत होकर वह अहमिन्द्र, पुण्योदयसे राजा वज्रबाहु और रानी प्रभंकराका पुत्र हुआ ॥१७–१८॥ वह अपने रूप, सौभाग्य एवं सद्गुणोसे युक्त हेमाङ्गद नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसकी रानीका नाम सुदत्ता था जो कि रूपमें रतिके समान थी ॥१९॥ उसने पुण्योदयसे मनको प्यारे पाँचो इन्द्रियोके नाना दिव्य भोगोंको उस सुन्दर नेत्रवालीके साथ ऐसे भोगता रहा जैसे कोई देव भोगता है ॥२०॥

कुछ समय बाद राजा वज्रबाहुने अपने पुत्र हेमाङ्गदको राज्य देकर दीक्षा ले ली। हेमाङ्गदने भी अच्छी तरह राज्य कर एक समय बादलको नष्ट होते देख सारे विषय-भोगोको मेघ व जलबुद्बुदके समान क्षणभङ्गुर जान, किम्पाकके फलके समान इन्द्रिय विषयोके

गुरो. समुद्रगुप्तस्य श्रुत्वा धर्ममुपान्तिके ।
संसारस्य क्षयं कर्तुं वाञ्छन् दत्त्वा स्वसूनवे ॥२३॥

राज्यं विमलनाथाय राजभिः पञ्चभिः शतैः ।
सार्धं जग्राह सद्दीक्षां सर्वसङ्गविवर्जिताम् ॥२४॥ युग्मम् ।

महाव्रतानि शीलानि गुणानथ च भावनाः ।
सङ्गृह्य सर्वशक्त्याऽसौ वर्तते स्म मुनीश्वरः ॥२५॥

समितिर्गुप्तिसद्ध्यानान् गृहीत्वा समता तदा ।
दण्डान् कषायशल्यादीन् जित्वा पञ्चेन्द्रियाण्यपि ॥२६॥

दर्शनज्ञानचारित्रद्विषड्विधतप.शुचः ।
सर्वशक्त्या चरित्वाऽसाववधिज्ञानमाप्तवान् ॥२७॥

आदित्यद्वादशाङ्गानि सर्वतोभद्रमुत्तमम् ।
सिंहनिष्क्रीडितादीनि चक्रारोरतपांसि च ॥२८॥

सम्यग्दर्शनसंशुद्ध्या विनयेन च शक्तित ।
वैयावृत्त्येन सङ्घस्य भक्त्या च परमेष्ठिनाम् ॥२९॥

इत्येवमादिभि सम्यक् पुन. षोडशकारणै ।
बबन्ध तीर्थकृन्नाम नृसुराऽसुरकम्पनम् ॥३०॥ युग्मम् ।

दीर्घकालं विहृत्याऽसौ सर्वशक्त्या तपश्चरन् ।
वने क्षीरवने भीमे भूताद्रौ सच्छिलातले ॥३१॥

कायोत्सर्गस्थितो धीरो धर्मध्यानपरोऽथ च ।
व्याधोऽपि नरकाच्च्युत्वा क्षीराटव्यां तु तद्गिरौ ॥३२॥

पापात्पापार्जनं कर्तुं रौद्ररूपोऽभवद्धरिः ।
तं दृष्ट्वा स मुनिं वैराद्यमकोपनोऽभवत् ॥३३॥

[illegible] पञ्चनमस्कारं सर्वदानन्दा निरन्तरम् ।
[illegible] संन्यासं सम्यगाऽऽतप्याऽऽराधनां मुनिः ॥३४॥

विपाककी कटुता समझ गया। तथा समुद्रगुप्त मुनिराजके समीप धर्मोपदेश सुनकर भवभ्रमणको मिटानेकी इच्छासे अपने पुत्र विमलनाथको राज्य देकर पाँच सौ राजाओंके साथ सब प्रकारका परिग्रह छोड़कर जिनदीक्षा ले ली ॥२१-२४॥ और महाव्रत, शीलव्रत, उत्तम गुण तथा भावनाओंका अपनी शक्तिसे अभ्यास करने लगा ॥२५॥ तथा समिति, गुप्ति, उत्तम ध्यान और समता-का आलम्बन ले, क्लेश पैदा करनेवाले क्रोधादि कषायों, माया, मिथ्या एवं निदान इन तीन शल्यों और पञ्चेन्द्रियोंको जीता (वशमें किया) तथा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रसे युक्त हो अपनी शक्तिपूर्वक १२ प्रकारके तपको तपकर अवधिज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद आदित्यव्रत, द्वादशांगव्रत, उत्तम सर्वतोभद्र तथा सिंहनिष्क्रीडित आदि उच्च तप करने लगा ॥२६-२८॥ फिर दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शक्तिसे त्याग तथा संघकी वैया-वृत्य, पञ्चपरमेष्टियोंकी भक्ति आदि दस प्रकारकी सोलहकारण भावनाओंको आराधन कर, नरलोक, सुरलोक और असुरलोक अर्थात् तीनों लोकोंको कम्पन पैदा करनेवाली तीर्थंकर नामकी प्रकृतिका बन्ध किया ॥२९-३०॥ फिर वे मुनिराज घोर तपस्या करते हुए बहुत कालतक विहार करते रहे और तत्पश्चात् भूताद्रि पर्वतके क्षीरवन नामक भयंकर जंगलमें एक बड़ी शिलाके ऊपर कायोत्सर्ग धारण कर धर्मध्यानमें लवलीन हो गये।

इधर वह भील भी नरकसे निकलकर उसी पर्वतके क्षीरवनमें पापसे पापको कमाता हुआ भयङ्कर रूपवाला सिंह हुआ। और मुनिको देखकर पूर्व वैरके कारण क्रोधसे आपेके बाहर हो उन्हें खा गया ॥३१-३३॥ उन मुनिने अपनी पूरी शक्तिसे पञ्चनमस्कार मन्त्रका ध्यान किया और संन्यास धारण कर चारों आराधनाओं-का अच्छी तरह आराधन किया ॥३४॥ तथा शरीर त्यागकर

भूत्वा प्राणतकल्पेन्द्रो विंशत्यर्णवजीवितः ।
बुभुजे रम्यं सत्सौख्यं सन्ततं सत्तप.फलात् ॥३५॥

सिंहोऽपि च महत्पापमर्जयित्वा स्वकर्मणा ।
चतुर्थनरके भूत्वा दशसागरजीवित· ॥३६॥

दहनताडनच्छेदभेदतक्षणभक्षणैः ।
बुभुजे दुःखमत्यन्तं नारकेभ्यो निरन्तरम् ॥३७॥

जम्बूवृक्षाङ्किते द्वीपे दक्षिणे भारते शुभे ।
काशीदेशे भुवि ख्याते स्वर्गलोकनिभे सदा ॥३८॥

श्वेतप्रासादसङ्कीर्णा विद्वज्जनसमावृता ।
नाकलोकपुरीवाभूद् वाराणस्यमितापुरी ॥३९॥

विश्वसेनोऽभवद्राजा शक्तित्रयसमन्वित. ।
विश्रुत शक्रवद् विद्वान् युतो बलविभूतिभिः ॥४०॥

ब्रह्मदत्तेत्यभून्नाम्ना तस्य कान्ताऽतिविश्रुता ।
शचीव रूपकान्तित्वकलाशीलगुणादिभिः ॥४१॥

षट्सु मासेषु शेषेषु प्राणतेन्द्रस्य जीविते ।
वस्त्राभरणसन्मालासुगन्धधनवृष्टिभि. ॥४२॥

विबुधाः पूजयामासुर्गुरोस्तस्य दिनं प्रति ।
काले त्वित्थं गते भोगैर्जिनगुर्वो स पुण्यत· ॥४३॥ युग्मम् ।

ब्रह्मदत्ताऽन्यदा हर्म्ये सम्यक् श्रीभिरुपासिता ।
सुखं शय्यातले सुप्ता निशान्ते पुण्यत. शुभान् ॥४४॥

ददर्श षोडशस्वप्नान् नागेन्द्रं वृषभं हरिम् ।
श्रियं दामद्वयं चन्द्रं सूर्यं मीनद्वयं पुटौ ॥४५॥

प्राणत स्वर्गका इन्द्र हुआ जहाँ उसकी आयु बीस सागरकी थी। वहाँ उसने अपने उत्तम तपके फलस्वरूप निरन्तर मनोहर सुख भोगे ॥३५॥ सिंहने भी अपने इस खोटे पापके कारण बहुत पापोंका संचय किया तथा चौथे नरकमें उत्पन्न हुआ जहाँ उसकी दश सागरकी आयु थी ॥३६॥ वहाँ उसने हमेशा दूसरे नारकियोंसे जलाना, पीटना, छेदन, भेदन, काटना और भक्षण आदि कार्योंसे बड़े-बड़े दुःख पाये ॥३७॥

अथानन्तर जम्बू वृक्षसे सुशोभित इसी जम्बू द्वीपके दक्षिण भागमें शुभ भारत क्षेत्रमें स्वर्गलोकके समान विश्वमें विख्यात काशी नामका देश है। वहाँ श्वेत महलोंसे युक्त तथा विद्वज्जनोंसे भरी हुई, दूसरी स्वर्गपुरी—अमरावती—के समान वाराणसी नामकी एक बड़ी भारी नगरी थी ॥३८–३९॥ वहाँ विश्वसेन नामका राजा था जो तीन शक्ति प्रभुत्व, मन्त्र और उत्साहसे युक्त तथा बलविभूति आदिसे सम्पन्न वह विद्वान् राजा इन्द्रके समान प्रसिद्ध था ॥४०॥ उसकी रानीका नाम ब्रह्मदत्ता था, जो अपने रूप, कान्ति, कला, शील आदि गुणोंसे इन्द्राणीके समान विख्यात थी ॥४१॥ इधर प्राणत स्वर्गके इन्द्रके जीवनकालके जब छह माह शेष रह गये तब देवता जिन भगवान्‌के भावी माता-पिताकी प्रतिदिन वस्त्र, आभूषण, उत्तममाला, सुगन्धित द्रव्य तथा धन आदिकी वर्षासे पूजा करने लगे। इस प्रकार जिन भगवान्‌के माता-पिताका काल पुण्य प्रभावसे सुखपूर्वक बीतने लगा ॥४२–४३॥

एक समय श्री आदि देवियोंसे अच्छी तरह सेवित ब्रह्मदत्ता रानी अपने महलमे सुखपूर्वक शय्यापर सो रही थी कि रात्रिके अन्तिम प्रहरमें उसने पुण्योदयसे ये शुभ सोलह स्वप्न देखे—१ गजपति, २ वृषभ, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ दो मालाएँ, ६ चन्द्रमा,

पद्मखण्डं समुद्रं च सिंहपीठं विमानकम् ।
भवनं रत्नराशिं च धूमहीनं च पावकम् ॥४६॥ त्रिकम् ।
इत्येतान् षोडशस्वप्नान् मात्रे सन्दर्श्य नाकतः ।
च्युत्वा हेमाङ्गदः पुण्यात्कम्पयन् भुवनत्रयम् ॥४७॥

### तोटकवृत्तम्

सितवारणरूपधरो महितस्त्रिजगत्पतिभिर्वरमातृमुखम् ।
प्रविवेश विबुध्य च सापि तदा समलङ्कृतदेहवरा मुदिता॥४८॥

### स्रग्धरावृत्तम्

राज्ञे स्वप्नानवोचद्वरविनययुता ब्रह्मदत्ताऽऽत्मदृष्टान्
श्रुत्वा राजाऽपि तेषां फलममितगुणस्त्वित्थमाख्यत्प्रियायै ।
श्रीमान् सूनुर्भविष्यत्यमलगुणनिधिस्ते त्रिलोकस्य नाथो
देवेन्द्रादित्यदैत्यक्षितिपतिमहितः स्वप्नसन्दर्शनेन ॥४९॥चतुष्कम्

इति पार्श्वनाथचरिते पुराणसारसङ्ग्रहे स्वर्गावतरणं
नाम द्वितीयः सर्गः समाप्तः ।

---

७ सूर्य, ८ मीनयुगल, ९ दो सुवर्ण कलश, १० पद्म-सरोवर, ११ समुद्र, १२ सिंहासन, १३ विमान, १४ धरणेन्द्रका भवन, १५ रत्नराशि और १६ निर्धूम अग्नि ॥४४-४६॥ हेमाङ्गदका जीव प्राणतेन्द्र इन १६ स्वप्नोंको माताको दिखलाकर अपने पुण्य-बलसे तीनों भुवनोंको कम्पित करता हुआ स्वर्गसे च्युत हुआ ॥४७॥ देवेन्द्र, सुरेन्द्र और नरेन्द्रोंसे पूजित उन भगवान्ने श्वेत हाथीका रूप धारण कर माताके उत्तम मुखमें प्रवेश किया। तब माता जाग गई, और प्रसन्न होकर प्रातःक्रिया कर आभूषण आदि पहने तथा उस ब्रह्मदत्ता रानीने अपने देखे गये स्वप्नोंको अत्यन्त विनयके साथ राजासे कहे। यह सब सुनकर अपरिमित गुणशाली राजाने अपनी प्रिय रानीसे स्वप्नोंके फल इस प्रकारसे कहा कि तुम्हें स्वप्न देखनेसे एक ऐसा शोभावान् पुत्र होगा जो निर्मल गुणोंका पुञ्ज, तीन लोकका स्वामी तथा देवेन्द्र, ज्योतिष्केन्द्र, असुरेन्द्र तथा नरेन्द्रोंसे पूजित होगा ॥४८-४९॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके पार्श्वनाथचरितमें स्वर्गावतरण नामका द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ॥

## तृतीयः सर्गः

कोटीस्तिस्रोऽर्धकोटिं च धनवृष्टिं दिने दिने ।
धनदो व्यमुचन्मासान्दिव्यान्पञ्चदशाञ्जनान् ॥१॥

नवमासेषु पूर्णेषु चन्द्रं पूर्वदिशो यथा ।
जिनेन्द्रं सुषुवे सम्यक् देवस्त्रीपरिरक्षिता ॥२॥

प्रसूतिं तस्य देवेन्द्रा ज्ञात्वा स्वासनकम्पनैः ।
आययुर्देवसेनाभिः सार्धं तत्पुरमादरात् ॥३॥

महर्द्ध्या सुजिनं नीत्वा मन्दराऽग्रं सुरेश्वराः ।
अभिषिच्य जलैः पूर्णैः रत्नकुम्भैः पयोऽम्बुभि ॥४॥

वयोयोग्यैरलङ्कारैर्भूषयित्वाऽतिभक्तितः ।
स्तुत्वा स्तुतिसहस्रेण सर्वशक्त्याः स्तुतेः पदम् ॥ ५ ॥

पार्श्वनाथ इति ख्यातं नाम कृत्वा सुरेश्वरा ।
आनीय नगरं मातुर्विन्यस्याङ्के महाप्रभुम् ॥ ६ ॥

आनन्दनाटकं शक्रः समाक्रीड्य च भक्तित ।
पूजयित्वा जिनं चाऽपि गुरू चासौ दिवं ययौ ॥ ७ ॥

यथा यथा ययौ वृद्धिं कान्त्या बालेन्दुवत्प्रभु ।
तथा तथोग्रवंशश्रीर्ययौ ज्योत्स्नेव वर्द्धनम् ॥ ८ ॥

विवेश सर्वजीवानां मनांसि गुणन्हृति ।
तत्र मर्येषु तोयेषु छायेवेन्दो सुनिर्मला ॥ ९ ॥

# तृतीय सर्ग

भगवान्की गर्भावस्थामे आनेके ६ महीने पहले और गर्भावस्थाके ९ महीनोंमे अर्थात् पन्द्रह माहतक जनताके हितके लिए प्रतिदिन कुबेरने साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वृष्टि की ॥ १ ॥ जैसे पूर्व दिशासे चन्द्रमा उगता है उसी तरह देवाङ्गनाओंसे सुरक्षित माताने नव मास पूर्ण होनेपर जिनेन्द्र भगवान्को उत्पन्न किया ॥ २ ॥ उस समय अपने आसनोंके कम्पनसे देवेन्द्रोंने भगवान्के जन्मको जाना और श्रद्धापूर्वक देवोंकी एक बड़ी सेनाके साथ वे उस नगरमे आये ॥ ३ ॥ फिर उन्हे बड़े समारोहके साथ सुमेरु पर्वतपर ले गये और सभी इन्द्रोंने मिलकर क्षीरसागरके जलको रत्नकलशोंमे भरकर उनका अभिषेक किया ॥ ४ ॥ तथा उन्हे अवस्था योग्य सुन्दर आभूषण पहनाये और स्तुति योग्य उन भगवान्की पूर्ण आत्मशक्तिसे, अतिभक्तिवश हो हजारों प्रकारसे स्तुति की एवं उनका नाम पार्श्वनाथ रखकर उन्हे वे नगरमे ले आये और उन महाप्रभुको माताकी गोदमे दे दिया ॥५–६॥ इन्द्रने उस अवसरपर बड़ी भक्तिसे आनन्द नामका नाटक खेला और भगवान् तथा उनके माता-पिताकी पूजा कर स्वर्गलोक चले गये ॥ ७ ॥

ये प्रभु बालचन्द्रमाके समान जैसे-जैसे कान्तिमे बढ़ते गये वैसे-वैसे उनके उग्रवंशकी शोभा चन्द्रमाके समान ही बढ़ती गई ॥ ८ ॥ उनके ( निर्मल ) गुणोंका समूह, सभी जीवोंके मनमें ठीक वैसे ही प्रवेश होने लगा जैसे कि जलाशयोंमें चन्द्रमाका निर्मल प्रतिबिम्ब ॥ ९ ॥ रूप और सौभाग्यसे सम्पन्न वे भगवान

मतिश्रुतावधिज्ञानरूपसौभाग्यवान् जिनः ।
ततस्त्वनुक्रमाद्वृद्धिं सिन्धुरुत्तमप्रभः ॥१०॥
सपना पंच गानर्हिभावविन्द्रानया वरै ।
सुखेन सन्तानं देवै पुण्याद्देवेन्द्रपूजितः ॥११॥ युग्मम् ।
सिंहोऽपि नरकाच्च्युत्वा चिरं भ्रान्त्वा जगद्भवे ।
पश्चात्सजटी कश्चित्तापसस्तत्र पुरे ॥१२॥

सहस्रजटिनामाऽसौ भूत्वा ज्ञानाद्धि तापसः ।
स पञ्चाऽग्नितपः कुर्वन् वाराणस्या वहिः स्थितः ॥१३॥ युग्मम् ।
पार्श्वनाथोऽन्यदा श्रीमान् स्वल्पकल्पविभूषणैः ।
आरुह्य शिबिकां दिव्यां विनोदाद्भूमिपैः सह ॥१४॥
अनुयातं विनिर्गत्य नागरैः परिवारितः ।
पुर्या बहिः स्थितं दृष्ट्वा तापसं तुष्टुवुस्तकम् ॥१५॥
केचिदज्ञानतो मर्त्या दिव्यं कर्तुं सिद्ध तपः ।
सहस्रजटिनस्त्वन्यः कः शक्नोति महीतले ॥१६॥ त्रिकम् ।
श्रुत्वा प्रोचे जिनेन्द्रस्तु तपसो लक्षणं तदा ।
यस्य नास्ति दया सम्यक् तस्य धर्मः कुतस्तपः ॥१७॥
तापसस्याऽस्य हीनस्य दयाज्ञानादिभिस्तथा ।
किं करोति तपः सौख्यं श्रुत्वोक्तमिति तद्वचः ॥१८॥ युग्मम् ।
कुलिंगी तु स चोद्धृत्य शिबिकायाः पुरः स्थितः ।
दर्शयाऽज्ञानतां शीघ्रं ममेति ह रुपाऽवदत् ॥१९॥

काष्ठस्य गह्वरे सर्पो दह्यमानो महाऽग्निना ।
दृष्ट्वा ह्यवधिना नाथो दर्शयामास सस्मितः ॥२०॥

---

१. वाल्यात्तिनुच्छायः इति उत्तरपुराणम् ।

मति श्रुत और अवधिज्ञानसे विराजित थे तथा उनके हाथकी ऊँचाई नौ हाथकी थी व शरीरका रंग प्रियङ्गुके पुष्पके समान था ॥१०॥ देवेन्द्रोसे पूजित वे भगवान् इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरके द्वारा भक्तिपूर्वक लाये गये नाना भोगोसे सदा सुखपूर्वक रहने लगे ॥११॥

इधर वह सिंहका जीव नरकसे निकलकर वहुत समयतक संसारमे घूमता फिरा। फिर वहीं वनारसमे किसी शतजटी नामके तपस्वोका सहस्रजटी नामका पुत्र हुआ और वह भी अज्ञानसे तपस्वी वनकर वनारसके वाहर एक जगह पञ्चाग्नि तप करने लगा ॥१२-१३॥

किसी समय श्री पार्श्वनाथ अनेक वस्त्राभूषणोसे अलंकृत हो अनेक राजाओके साथ मनोविनोद करनेके लिए देवोपनीत पालकीपर चढ़कर सेवक वर्गके साथ तथा नगरवासियोंसे आवृत हो वाहर निकले। नगरके वाहर उन्होने उस तापसको देखा। वहॉ कुछ लोग उस तपस्वीकी प्रशंसा कर रहे थे कि इस दिव्य तपको सहस्रजटीके सिवाय और कौन कर सकता है ॥१४-१६॥ तव यह सुनकर भगवानने तपस्वीके लक्षण वतलाये और कहा कि जिसके पूर्ण दया नहीं है उसका तप भी धर्म नहीं हो सकता। तथा दया और ज्ञानसे रहित इस तपस्वीका यह तप इसे क्या सुख दे सकता है। इस प्रकार उनके वचनोको सुनकर वह मिथ्यात्वी तपस्वी उद्धत भावसे भगवान्की पालकीके आगे ख[illegible] हो गया और वड़े क्रोधके साथ वोला कि अच्छा, तो तुम जल्दी ही मेरी अज्ञानता दिखलाओ ॥१७-१९॥ तव उन भगवान्ने अपने अवधिज्ञानसे यह जानकर कि लकड़ीके खोखलेमे वैठे दो सर्प-सर्पिणी इस महाग्निसे जल रहे है उसे यह कुछ मुस्कराते हुए दिखलाया ॥२०॥ तथा भगवान्ने उन दोनो सर्प-सर्पिणीको पञ्च-

भाषते स्म नमस्कारं सर्पयोर्भगवान्स्फुटम् ।
सङ्गृह्य तौ नमस्कारौ जातौ भवनवासिनौ ॥२१॥

नागेन्द्रो नागिनी चापि महर्द्ध्या पार्श्वमीश्वरम् ।
प्रतुष्टुवतुरागत्य पूजयित्वा स्वशक्तितः ॥२२॥

तापसो मानभङ्गाच्च क्रोधेनाऽग्निप्रवेशनम् ।
कृत्वा ज्योतिष्कलोकेऽसौ देवोऽभूच्छम्वराऽह्वयः ॥२३॥

वर्षाणां त्रिंशतं दिव्यैरानीतैर्देवमानवैः ।
भोगै रेमे सदा पार्श्वः कौमारे जगदीडितः ॥२४॥

भगवानन्यदा पश्यन्नाटकं नयनप्रियम् ।
सद्यो निर्वेदमापन्नो मतिज्ञानेन पुष्पत. ॥२५॥

आयुष्यरूपसौभाग्यधनवीर्यविभूतयः ।
अनित्या मेघसंघाततडिद्वैन्द्रचापवत् ॥२६॥

इत्थं मत्वा पुनश्चापि विषयाणां च दुष्टताम् ।
विपाके कटुकत्वं च ध्यात्वा तपसि निश्चित. ॥२७॥ युग्मम् ।

लौकान्तिका. क्षणे तस्मिन्नागत्य प्रणयेश्वरम् ।
धर्मतीर्थं हितं सम्यगित्युक्त्वा ते दिवं ययु· ॥२८॥

ज्ञात्वा सर्वेऽपि देवेन्द्राः स्वसिंहासनकम्पनं ।
प्रव्रज्यां [illegible] तुष्टुवुर्जिनम् ॥२९॥

इन्द्राणी [illegible] विकृत्य मणिमण्डपम् ।
[illegible] ॥३०॥

[illegible] ।
[illegible] ॥३१॥

नमस्कार मन्त्र स्पष्ट उच्चारणपूर्वक सुनाया एवं उस मन्त्रको सुनकर वे दोनों भवनवासी देवोमें धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। और वे दोनो वहाँ आकर बड़े वैभवके साथ अपनी शक्ति-प्रमाण भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा कर स्तुति करने लगे ॥२१-२२॥ तव वह तापस अपने मानभङ्गको देख क्रोधसे अग्निमें जल मरा और ज्योतिषी देवोंसे शम्वर नामका देव हुआ ॥२३॥

जगत्से पूज्य भगवान् पार्श्वनाथ कुमारावस्थाके तीस वर्षोंतक देव और मनुष्यों-द्वारा लाये गये दिव्य भोग भोगते हुए सुखसे रहने लगे। एक समय वे एक नयनाभिराम नाटकको देख रहे थे कि पुण्योदयसे मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होनेसे उन्हें शीघ्र ही वैराग्य हो गया। उन्होंने संसारमें आयु, रूप, सौभाग्य, धन, वीर्य, विभूति आदि सभी वस्तुओको मेघसमूह, बिजली और इन्द्रधनुषके समान अनित्य जानकर और फिर विषयभोगो-की दुष्टता एवं विपाककालमें कटुताका ध्यान कर तपस्या करनेका निश्चय किया ॥२४-२७॥ उसी क्षण वहाँ लौकिक देव आये और भगवान्से निवेदन किया कि "हे भगवन्! आप उत्तम, हितकारी धर्मतीर्थका प्रवर्तन कीजिए।" ऐसा कह वे लोग अपने स्थान-स्वर्गको लौट गये ॥२८॥

तब सभी देवेन्द्र अपने-अपने आसनोंके कम्पनसे भगवान्के दीक्षाकल्याणकको जानकर देवोंकी सेनाके साथ वहाँ आये और उन्होंने भगवान्को नमस्कार किया ॥२९॥ तथा महलके आँगनमे अत्यन्त दिव्य मणिमण्डपकी रचनाकर तथा रत्नोंके सिंहासनपर और छत्रके नीचे बैठाकर क्षीरसागरके जलसे उन्होने बड़े वैभवके साथ भक्तिपूर्वक भगवान्का अभिषेक किया और सुखसे बैठे हुए भगवान्को उत्तम वस्त्र, आभूषण एवं सुगन्धित पदार्थोंसे आभू-षित किया ॥३०-३१॥ फिर इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने मणियोंकी

शक्राज्ञया कुबेरश्च शिबिकां मणिनिर्मिताम् ।
विमलाख्यामुपानीय पुरन्दरमजिज्ञपत् ॥३२॥
व्यजिज्ञपच्च शक्रोऽपि विनयेन मुनीश्वरम् ।
मातरं पितरं बन्धून् पार्श्वौ मधुरया गिरा ॥३३॥
अध्रवत्वाऽशुचित्वं च शरीरस्य जरारुजाः ।
संयोगश्चाप्रियैर्मृत्युर्वियोगश्च प्रियैर्ध्रुवम् ॥३४॥
अस्त्येव मानवानां तद्गच्छाम्याचरितुं तपः ।
भवद्भिर्मुच्यतां सम्यगित्युक्त्वा तान्व्यसर्जयत् ॥३५॥ त्रिकम् ।

तत्क्षणे पटहास्ताला नेदुर्दुन्दुभयोऽम्बरे ।
उत्कृष्टसिंहनादांश्च तदा चक्रुः सुरेश्वराः ॥३६॥
पुष्पवृष्टिः पपाताशु मुक्ता देवकरैः शुभा ।
दिव्यगन्धोदकं चापि सुरभिर्मारुतो ववौ ॥३७॥
एतेषु वर्तमानेषु शिबिकामारुरोह सः ।
पूर्वोत्क्षिप्तां नृपैर्भक्त्या स्वयमूढ्वा सुरेश्वराः ॥३८॥
सुतापसाश्रमं रम्यं महर्द्ध्या निन्युरादरात् ।
एकदेशे तु चैत्यस्य कृत्वा पल्यङ्कमीश्वरः ॥३९॥
कृत्वा सिद्धनमस्कारं सन्त्यज्याभरणानि च ।
वस्त्रं च जगृहे दीक्षां त्रिशतैर्भूमिपैः सह ॥४०॥
रत्ने पटलके केशाञ्जिनस्यादाय वासवः ।
अर्चयित्वा च सद्भक्त्या चिक्षेप क्षीरवारिधौ ॥४१॥
पौषे मासे परे पक्षे पूर्वाह्णैकादशीतिथौ ।
भक्तेन चाष्टमेनेशः स मुनिः संयमे स्थितः ॥४२॥

## भुजङ्गप्रयातवृत्तम्

मनःपर्ययज्ञानमूर्ध्वं बभूव,
प्रदीक्षाक्षणे चैव सम्यग्जिनस्य ।
चतुर्ज्ञानयुक्तो बभौ त्यक्तसंगो,
निरभ्राम्बरे पूर्णचन्द्रो यथैव ॥४३॥

वनी विमला नामकी पालकीको वहाँ लाकर इन्द्रको सूचना दी। तब इन्द्रने बड़े विनयके साथ भगवान्‌से निवेदन किया। उस समय पार्श्वनाथने अपने माता-पिता और बन्धुओंसे मधुरवाणी के द्वारा निवेदन किया कि ॥३२-३३॥ यह शरीर जरा और रोगोसे पूर्ण, पापमय एवं अशुचि है। इस संसारमे मनुष्योको अप्रिय लोगोसे संयोग, इष्ट लोगोसे वियोग एवं मृत्यु निश्चित है इसलिए मैं तपस्या करने जाता हूँ। आप सब लोग मुझे मुक्त कर दें। इस प्रकार उनसे कहकर उन्हे विदा किया ॥३४-३५॥

उस क्षण नगाड़े, ढोल तथा आकाशमे दुन्दुभियाँ बजने लगीं और उस समय देवेन्द्रोने उच्चस्वरसे सिंहनाद किया ॥३६॥ वहाँ देवोके द्वारा जल्दी ही छोड़ी गई उत्तम पुष्पवृष्टि होने लगी और दिव्य सुगन्धित जल सींचा जाने लगा तथा सुगन्धित वायु बहने लगी ॥३७॥ इसी समय वे भगवान् पालकीपर चढ़े। उस पालकीको पहलेपहल अनेक नृप भक्तिपूर्वक स्वयं लेकर चले, इसके बाद इन्द्रगण बड़ी विभूतिसे एव श्रद्धाभावसे उस पालकी-को रमणोय सुतापसाश्रम नामके वनमें ले आये। वहाँ भगवान्‌ने एक मन्दिरके एक कोनेमें पर्यंकासनसे बैठकर सिद्धोको नमस्कार किया और सारे आभूपण और वस्त्रोंको छोड़कर तीन सौ राजाओंके साथ जिन-दीक्षा ले ली ॥३८-४०॥ (भगवान्‌ने पंचमुष्टिसे केशलोंच किया) तथा इन्द्रने उन केशोंको रत्नोंकी पिटारीमें रखकर और उत्तम भक्तिसे पूजाकर उन्हें क्षोरसागरमें क्षेप दिया ॥४१॥

उन भगवान्‌ने पौप महीनेके कृष्णपक्षकी एकादशीके पूर्वाह्न समयमे अष्टमभक्तोपवासपूर्वक संयम धारण किया ॥४२॥ भगवान्‌को दीक्षा लेते समय ही मनःपर्यय ज्ञान प्रकट हो गया और चार उत्तम ज्ञानोंसे युक्त तथा सर्वपरिग्रह रहित वे भगवान्

## स्रग्धरावृत्तम्

सद्दीक्षायां जिनस्य प्रमुदितहृदयाः सर्वशक्त्याऽतिभक्त्या
पूजां कृत्वा सुरेन्द्राः सुरगणसहिता देवदेवस्य सम्यक् ।
नानाचित्रैः सुवृत्तैर्जिनगुणचरितैः पापनाशार्थमुच्चैः
स्तुत्वा तं त्रिः परीत्य प्रवरयतियुतं स्वर्गलोकान्प्रयाताः ॥४४॥

इति पार्श्वनाथचरिते पुराणसारसंग्रहे भगवत्प्रव्रजनं नाम
तृतीयः सर्गः समाप्तः ।

ऐसे शोभित होने लगे जैसे मेघरहित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा ॥४३॥

इस दीक्षा-कल्याणकमे देवगण सहित इन्द्रोने प्रसन्न हृदय हो, अपनी पूर्ण शक्ति और अतिभक्तिसे देवोके देव-भगवान्-की अच्छी तरह पूजा की और पाप नाश करनेके हेतु जिनेन्द्रके गुणोका वर्णन करनेवाले नाना चित्रात्मक छन्दोसे उनकी स्तुति की और उत्तम मुनियोसे घिरे हुए उन भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा कर स्वर्ग लोक चले गये ॥४४॥

इसप्रकार पुराणसारसग्रहके श्री पार्श्वनाथचरितमें भगवान्‌की दीक्षा नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

# चतुर्थः सर्गः

अपरेद्युर्जिनेन्द्राय [1]पद्मखेटपुरे नृपः ।
परमान्नमदाद्धन्यः श्रद्धादिगुणसंयुतः ॥ १ ॥

तत्क्षणे पूजयामासुर्हृष्टा दानपतिं सुराः ।
अहो दानमहो दानमिति नादोऽम्बरेऽभवत् ॥ २ ॥

सुरदुन्दुभयो नेदुर्वायुश्च सुरभिर्ववौ ।
आकाशाद् वसुधारा च पुष्पवृष्टिः पपात च ॥ ३ ॥

देहधारणतन्मात्रं गृहीत्वाऽऽहारमल्पकम् ।
निर्गत्य च पुरान्नाथो ज्ञानध्यानरतोऽभवत् ॥ ४ ॥

सम्यगष्टविधाचारे दर्शनस्य सुखालये ।
ज्ञानस्याष्टविधाऽऽचारे त्रयोदशविधे तथा ॥ ५ ॥

आचारे च चरित्रस्य चचार तपसः सदा ।
सम्यग्धीः षड्विधाऽऽचारे विहरंश्च स सन्ततम् ॥ ६ ॥ युग्मम् ।

चातुर्मास्यमहोरात्रं घोरं वीरतपश्चरन् ।
आश्रमे तापसानां स प्रतिमासंस्थितो मुनिः ॥ ७ ॥

व्योम्नि शम्बरदेवस्तु तत्काले सह कान्तया ।
गच्छन्प्रतिहते याने यानात्क्रुद्धवाऽवरुह्य सः ॥ ८ ॥

निर्वाणे न्यस्तसच्चित्तमकम्प्यं गिरिराजवत् ।
महाक्षमं महासत्त्वं धर्मध्यानपरायणम् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा तं पूर्ववैरेण प्रेरितः पापकर्मणा ।
चक्रे घोरोपसर्गं वै दीर्घसंसारकारणम् ॥१०॥ युग्मम् ।

---

१. गुल्मखेटपुरः इति उत्तरपुराणे ।

## चतुर्थ सर्ग

एक दिन ( पारणाके लिए ) भगवान् पद्मखेटपुर गये। वहाँ उन्हे धन्य नामक राजाने श्रद्धा, तुष्टि, भक्ति आदि गुणोसे युक्त हो परमान्न–खीर–का आहारदान दिया। उसीक्षण देवताओने प्रसन्न होकर उस दानपतिकी पूजा की और आकाशमें अहो दान, अहो दान, इस प्रकारके शब्द हुए ॥१–२॥ देव-दुन्दुभियाँ बजने लगी तथा सुगन्धित वायु बहने लगी और आकाशसे धनवृष्टि एवं पुष्पवृष्टि होने लगी ॥३॥ उन भगवान्ने देहधारण मात्रके लिए ही थोड़ा-सा आहार लिया और नगरसे लौटकर ज्ञान ध्यानमें लीन हो गये ॥४॥ उन उत्तमज्ञानी भगवान्ने निरन्तर विहार करते हुए सुखके हेतुभूत सम्यग्दर्शनके आठ प्रकारके आचारका, सम्यग्ज्ञानके आठ प्रकारके आचारका एवं सम्यग्चारित्रके तेरह प्रकारके आचारका तथा सम्यक्तपके छै प्रकारके आचारका अच्छी तरह पालन किया ॥५–६॥

इस प्रकार चार माहतक रात-दिन घोर वीर-तपस्या करते हुए एक समय वे तापसोके आश्रमके पास प्रतिमायोग धारणकर बैठ गये। उस समय शम्बर नामका देव अपनी प्रिय देवीके साथ आकाश-मार्गसे कहीं जा रहा था। ( भगवान्के ऊपर आते ही ) उसका विमान रुक गया इससे वह विमानसे उतरकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥७–८॥ उसने वहाँ मोक्षमें चित्त लगाये हुए, पर्वत-राजके समान निश्चल, अतिसहिष्णु, बलशाली एव धर्मध्यानमें संलग्न भगवान्को देखा और पापकर्म स्वरूप अपने पूर्व वैरसे प्रेरित हो उनके ऊपर अपने ही भवभ्रमणको बढ़ानेवाले घोर उपसर्ग किये ॥९–१०॥ उसने भालू, शार्दूल, सिंह, सर्प,

रिक्षशार्दूलसिंहादिनागोष्ट्रमहिषादिभिः ।
उपसर्गं महच्चक्रे पिशाचैश्च विरूपकैः ॥११॥
चक्रत्रिशूलबाणासिच्छुरिकाशूलतोमरैः ।
प्रासमुद्गरखड्गाद्यैर्निहन्ति स्मायुधानि च ॥१२॥
मल्लिकाकेतकीनागजात्यादिकुसुमानि च ।
सम्भूय पादयोस्तस्य पतन्ति स्म सुपुण्यतः ॥१३॥ युग्मम् ।
धाराभिर्मुष्टिमात्राभिर्घोराकारां ववर्ष च ।
वृष्टिं पाषाणसङ्कीर्णां जिनस्योपरि सर्वतः ॥१४॥
दुःखं कर्त्तुं जिनेन्द्रस्य वृष्टिश्च न शशाक सा ।
इत्थं चक्रे सुरस्तीव्रमुपसर्गं दिनत्रयम् ॥१५॥
कर्त्तुं कर्मक्षयं सम्यङ्नगवन्निश्चलं स्थितम् ।
दृष्ट्वा प्रवृद्धमन्युः स स्वपूर्वकृतपापतः ॥१६॥
उत्तमाङ्गे क्षिपामीति भीमसुद्धृत्य पर्वतम् ।
तस्मिन्व्योम्नि स्थिते सद्यो विदित्वा तत्क्षणे महत् ॥१७॥
उपसर्गं जिनेन्द्रस्य स्वसिंहासनकम्पनात् ।
नागेन्द्रो भूतलाच्छीघ्रं नागिन्या सार्धमुद्गतः ॥१८॥ युग्मम् ।
कृत्वा फटासहस्राणि ज्वलन्मणिविभूषितः ।
पार्श्वनाथं सुनागेन्द्रो भक्त्या प्रच्छाद्य संस्थितः ॥१९॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना दिव्यरूपा महाप्रभा ।
पूर्णचन्द्रानना वृत्तपीनोन्नतपयोधरा ॥२०॥
मुष्टिप्रमाणसन्मध्या नीलोत्पलदलेक्षणा ।
नागिनी च बृहच्छत्रं वैदूर्यमणिदण्डकम् ॥२१॥
हिममुक्ताकलापाढ्यं दीप्तवज्रमयं मुदा ।
सम्यग्धृत्वा स्थिता भक्त्या तत्क्षणे च जिनेश्वरः ॥२२॥ त्रिकम् ।
क्षपकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानपरायणः ।
सम्प्रापत्केवलज्ञानं घातिकर्मविनाशनात् ॥२३॥

ऊँट तथा भैंस आदिका तथा नाना रूपधारी राक्षसोका रूप धारण-कर बड़ा भारी उपसर्ग करना प्रारम्भ किया ॥११॥ तथा उन्हें चक्र, त्रिशूल, बाण, तलवार, छुरी, अंकुश, गॅडासा, भाला, मुद्गर आदि हथियारोंसे मारना प्रारम्भ किया पर वे सब आयुध भगवान्‌के पुण्योदयसे मोगरे, केतकी, नागकेशर, चमेली आदिके पुष्पोंके रूपमें परिणत होकर भगवान्‌के चरणोंमें गिरते थे ॥१२-१३॥ तब उसने भगवान्‌के ऊपर चारों ओरसे भयंकर, मोटी धारावाली पत्थरोंसे भरी हुई वर्षा करना प्रारम्भ किया ॥१४॥ पर उस वृष्टिसे भगवान्‌को थोड़ा भी दुख नही हुआ। इस प्रकार उस शम्बरदेवने तीन दिन तक महान् उपसर्ग किये ॥१५॥ फिर उन्हें कर्म क्षय करनेके लिए पर्वतके समान निश्चल खड़ा हुआ देखकर, उस देवका, पूर्व जन्ममें किये गये पापोके कारण, क्रोध बढ़ गया ॥१६॥ और एक भयङ्कर पर्वतको उठाकर भगवान्‌के शिरपर पटकनेके इरादेसे ज्योंही वह आकाशमें गया, त्योंही अपने आसनके कम्पनसे भगवान्‌के ऊपर बड़ा भारी उपसर्ग जानकर, धरणेन्द्र, पद्मावतीके साथ शीघ्र ही पाताल लोकसे निकलकर आया ॥१७-१८॥ चमकते हुए मणियोंसे सुशोभित वह धरणेन्द्र अपनी हजारो फणाओसे भगवान्‌को ढँककर खड़ा हो गया ॥१९॥ और उसकी देवी, सर्वलक्षणोसे सम्पन्न, दिव्यरूपवाली, बड़ी कान्तिवाली, चन्द्रमुखी, गोल, स्थूल एवं उन्नत स्तनवाली, क्षीण कटिवाली एवं नील कमलके समान नेत्रवाली-पद्मावती, एक ऐसे छत्रको भगवान्‌के ऊपर धारण कर खड़ी हो गई जिसका कि दण्ड वैडूर्यमणिका था, किनारेपर शुक्ल मोतियोकी लड़ियाँ लगी थीं, एव जो वज्रके समान चमक रहा था। उस समय भगवान्‌ने क्षपक श्रेणीमे आरूढ़ होकर शुक्लध्यानमें लवलीन हो चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ॥२०-२३॥

चैत्रे मासि सिते पक्षे चतुर्थ्यान्तविशाखके ।
पूर्वाह्ने केवलज्ञानेनार्हन्त्यं प्राप्तवान् सह ॥२४॥

देवेन्द्रास्तत्क्षणे चैव ज्ञात्वा स्वासनकम्पनात् ।
आलोक्याऽवधिना सम्यक्केवलज्ञानसम्भवम् ॥२५॥

विमानसिंहनागाश्च व्याघ्रक्रौञ्चादिवाहनान् ।
आरुह्य विविधाऽनीकैर्देवीभिश्च सहाययुः ॥२६॥

मल्लिकाजातिपुन्नागकेतकीवकुलादिभिः ।
पुष्पैर्दिव्याऽक्षतैर्गन्धधूपदीपादिभिर्वरैः ॥२७॥

सम्यगभ्यर्च्य सद्भक्त्या प्रकृत्य त्रिप्रदक्षिणम् ।
नानाप्रकारसुस्तोत्रैस्तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥२८॥ युग्मम् ।

गन्धर्वाख्यः सुरश्चाऽपि भीत्वा देवेन्द्रदर्शनात् ।
विहाय पर्वतं शीघ्रं जिनेन्द्रं शरणं ययौ ॥२९॥

मया कृतं महादोषमज्ञानात्पापकर्मणा ।
क्षमस्व लोकनाथेति ननाम जिनपादयोः ॥३०॥

भगवान् सहजः पूर्वं स्वकपुण्यात्सुखानि च ।
बुभुजे सन्ततं पापान्मग्नोऽहं दुःखसागरे ॥३१॥

इतः प्रभृति पापानि सर्वदा न करोम्यहम् ।
इति सञ्चिन्त्य भीतोऽसौ द्रुतं जिनमपूजयत् ॥३२॥

## शिखरिणीवृत्तम्

महत्पापं कृत्वा, नरकगतो दुःखमखिलं,
त्वहं भुक्त्वा नष्टः सुखमिति मत्वा कुमतितः ।
इति ध्यात्वा भीतस्त्वसुखबहुले जन्मजलधे-
र्जिनेन्द्रं वन्दित्वा न खलु जगृहे धर्ममसरः ॥३३॥

उन्हे चैत्र मासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीके दिन पूर्वाह्णके समय विशाखा नक्षत्रमे केवलज्ञानके साथ अर्हन्त पद प्राप्त हुआ ॥२४॥ उस समय देवेन्द्रोने अपने-अपने आसन कँपनेसे अपने अवधिज्ञानसे भगवान्के केवलज्ञान उत्पन्न होनेकी वात अच्छी तरह जान ली ॥२५॥ और वे लोग अपने देवियोके साथ एवं नाना प्रकारकी सेनाके साथ विमान, सिंह, हाथी, व्याघ्र, क्रौञ्च आदि नाना वाहनोपर चढ़कर वहाँ आये ॥२६॥ वहाँ उन लोगोंने वड़ी भक्ति से, मल्लिका, जाति, पुन्नाग, केतकी, वकुल आदि फूलोसे तथा दिव्य तण्डुल, अक्षत, गन्ध, धूप, दीप आदि द्रव्योसे जिनेन्द्र भगवान्की पूजा की व तीन प्रदक्षिणा देकर नाना प्रकारके सुन्दर स्तोत्रोसे उनकी स्तुति करने लगे ॥२७–२८॥ तव वह शम्वर नामका देव देवेन्द्रको देखकर डर गया और पर्वतको छोड़कर शीघ्र ही जिनेन्द्र भगवान्की शरणमे गया ॥२९॥ और भगवान्के चरणोंको यह कहते हुए प्रणाम किया कि "हे नाथ ! पापकर्मके कारण अज्ञानवश मैंने वहुत वड़ा अपराध किया है, मुझे क्षमा कीजिये ॥३०॥ हे भगवन् ! आप पहले भी अपने पुण्यसे सहज सुख भोगते रहे है और मैं पापसे निरन्तर दुःख-सागरमे मग्न रहा हूँ । अव मैं आगे कभी भी न पाप करूँगा" । तथा इस प्रकार सोच, पापों से भयभीत हो वह भगवान्की पूजा करने लगा ॥३१–३२॥ मैं तो वड़े-वड़े पापोको करके नरकादि खोटी गतियोमे सारे दुखको भोगकर और कुवुद्धिसे उन्हें सुखकर मानकर नष्ट हो चुका हूँ । ऐसा सोच वह दुखोसे भरे इस संसार-समुद्रसे डर गया और जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना कर उस देवने सच्चे धर्मको धारण कर लिया ॥३३॥

तव सभी इन्द्रो, नरेन्द्रोने तथा व्यन्तरो और भवनवासियोंके इन्द्रोने एवं चन्द्र और सूर्यने परमसुख देनेवाले, तीन लोकके

## हरिणीवृत्तम्

सुरनरवरा दैत्या नागाश्शशाङ्कदिवाकराः,
सुरभिकुसुमैर्दीपैर्धूपैः सुगन्धजलाऽक्षतैः ।
परमसुखदं त्रैलोक्येशं समच्चर्य सुखालयं
नुनुवुरमलं भक्त्या चेत्थं जिनेश्वरमादरात् ॥३४॥

इति पार्श्वनाथचरिते पुराणसारसंग्रहे केवलज्ञानोत्पत्तिर्नाम
चतुर्थः सर्गः समाप्तः ॥

---

स्वामी और सुखके आगार भगवान्‌की सुगन्धित पुष्पों, दीप, धूप तथा सुगन्धित जल एवं अक्षतसे पूजा की और श्रद्धा एवं भक्तिसे उन निर्मल जिनेन्द्र भगवान्‌को प्रणाम किया ॥३४॥

इसप्रकार पुराणसारसंग्रहके पार्श्वनाथचरितमे केवलज्ञानोत्पत्ति नामक चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ ।

---

# पञ्चमः सर्गः

पञ्चेन्द्रियैः कषायैश्च कृत्स्नं त्रिभुवनं जितम् ।
त्वया जितानि यत्तानि जिन तुभ्यं ततो नमः ॥ १ ॥

रागो द्वेषश्च मोहश्च रिपवः सर्वदेहिनाम् ।
यज्जितास्ते त्वया नित्यं जिन तुभ्यं ततो नमः ॥ २ ॥

उपसर्गश्च शल्यानि कामा दण्डाः परीषहाः ।
त्वया जितानि यत्तानि जिन तुभ्यं ततो नमः ॥ ३ ॥

देवासुरनराः सर्वे सर्वदा पूजयन्ति च ।
स्तुवन्ति च यतो नस्त्वां त्वमेव परमेश्वरः ॥ ४ ॥

ददास्यात्महितं धर्ममादित्यौपधमेघवत् ।
अनपेक्ष्योपकारं यत्त्वमेव परमेश्वरः ॥ ५ ॥

सज्ज्ञानं दर्शनं चापि केवलाख्यं निरन्तरम् ।
सम्यक्त्वं सच्चरित्रं च विनाशान् मोहकर्मणः ॥ ६ ॥

अनन्तदानलाभौ च भोगवीर्यमनन्तकम् ।
अन्ताऽतीतोपभोगश्च जाताः सत्तपसः फलात् ॥ ७ ॥

घातिकर्मक्षयोद्भूता नवक्षायिकलब्धयः ।
एतास्तवैव यत्तस्मात्त्वमेव परमेश्वरः ॥ ८ ॥

अतिशयाश्चतुस्त्रिंशद् भ्राजन्ते सततं तव ।
प्रातिहार्या यतस्तस्मात्त्वमेव परमेश्वरः ॥ ९ ॥

## पञ्चम सर्ग

हे जिन ! आपने ऐसे तीनो लोकोंको जीत लिया है जो कि पञ्च इन्द्रियोके विषयभोग और क्रोधादि कषायोसे पूरी तरह जीते गये हैं, इसलिए आपको नमस्कार है ॥१॥ इस संसारमे राग द्वेष और मोह सभी प्राणियोके शत्रु हैं और आपने उन्हे निश्चयरूपसे जीत लिया है, इसलिए आपको नमस्कार है ॥२॥ उपसर्ग, वासनाएँ, मन वचन और कायकी दुष्प्रवृत्ति रूपी दण्ड और भूख प्यास आदि परिषह ये सब शल्य अर्थात् पीड़ाकारक हैं तथा आपने उन्हें जीत लिया है इसलिए हे भगवन् ! आपको नमस्कार है ॥३॥ सभी देव, असुर और उत्तम मनुष्य आपकी ही पूजा और स्तुति करते हैं इसलिए आप ही हम लोगोंके परमेश्वर हो ॥४॥ हे भगवन् ! सूर्य जैसे प्रकाशको, औषधियाँ स्वास्थ्यको और मेघ सुभिक्षको बिना किसी प्रत्युपकारकी आशासे देते है, उसी तरह आप आत्म-कल्याणकारी धर्मका उपदेश देते हो इसलिए आप ही परमेश्वर हो ॥५॥

हे भगवन् ! उत्तम तपके फलस्वरूप आपको सतत केवलनामका उत्तम ज्ञान और दर्शन अर्थात् केवलज्ञान और केवलदर्शन, और दर्शन एवं चारित्रमोहनीय कर्मोंके नाश करनेसे पूर्ण सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्चारित्र प्रकट हो गया है तथा चार घातिया कर्मोंके क्षय कर देनेसे अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, अनन्तउपभोग, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र ये नव लब्धियाँ प्राप्त हो गई है, इसलिए आप ही परमेश्वर हो ॥६–८॥ हे भगवन् ! आप जन्मकृत दश, केवल-

द्वादशानां गणानां सन्मध्ये धर्मप्रवोधनम् ।
कुर्वन्यद् भ्राजसे तस्मात्त्वमेव परमेश्वर. ॥१०॥
इति स्तुवन्ति ये नित्यं सद्भक्त्या त्वां जिनेश्वर ।
समाधिं [1]लघु वोधिं च लब्ध्वा ते यान्ति निर्वृतिम् ॥११॥

इत्थं देवासुरा मर्त्या भक्त्या स्तुत्वा जिनेश्वरम् ।
सर्वेऽपि शुश्रुवुर्धर्मं संसारक्षयकारणम् ॥१२॥
दृष्ट्वा जिनेन्द्रमाहात्म्यं तापसा वहवः स्वकम् ।
निन्दित्वा धर्ममत्यन्तं जिनस्याऽग्रे प्रवव्रजु. ॥१३॥
कृत्वा चतुर्विधं सङ्घं त्रिलोकसदसे हितम् ।
सद्धर्मं देशयन्देशान्विजहार जिनेश्वरः ॥१४॥
गणेशाः पार्श्वनाथस्य स्वयम्भुप्रमुखा दश ।
प्राप्तसप्तर्द्धयो नित्यं वभूवुर्देवपूजिताः ॥१५॥

कृत्स्नपूर्वधराणां तु मुनीनां त्रिशतं त्वभूत् ।
पञ्चाशच्च ३५० मत्वा संख्या पूजितानां सुरासुरैः ॥१६॥
अवधिज्ञानिनामासीत्सहस्रं च चतु शतम् । १४००
प्रमाणं सन्मुनीनां च रूपिद्रव्याणि पश्यताम् ॥१७॥
केवलज्ञानिनामासीत्प्रमाणं तु सहस्रकम् । १०००
सर्वद्रव्याणि पश्यन्ति ये तेषा कथितं सदा ॥१८॥

वैक्रियाशक्तिसंयुक्तमुनीनां च प्रमाणकम् ।
तदेव १००० स्वेष्टरूपाणि ये प्रकुर्वन्ति चात्मनाम् ॥१९॥
शतानि सप्तपञ्चाशद् ७५० यतीनां तु प्रमाणकम् ।
मन पर्ययसज्ज्ञानयुक्तानामभवत्सलु ॥२०॥
षट्छतं ६०० वादिनामासीत्प्रमाणं सञ्जयन्ति च ।
वादार्थिन· सुरान्मर्त्यानिरस्तावचेन चैव ये ॥२१॥

---

[1] [illegible] ।

ज्ञानकृत दश तथा देवकृत चौदह अतिशय इसप्रकार चौतीस अतिशयोसे सुशोभित हो तथा अशोकवृक्षादि आठ प्रातिहार्योंसे विभूषित हो, इसलिए आप ही परमेश्वर हो ॥९॥ हे भगवन् ! आप बारह प्रकारकी सभाके बीचमे धर्मोपदेश देते हुए विराजमान हो इसलिए आप ही परमेश्वर हो ॥१०॥ हे जिनेश्वर! जो आपकी नित्य ही सच्ची भक्तिसे स्तुति करते हैं वे चित्तकी एकाग्रता-पूर्वक शीघ्र ही केवलज्ञान पा मोक्षको जाते हैं ॥११॥

इसप्रकार सभी देवो, असुरो और मनुष्योने भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की स्तुतिकर उनसे भवभ्रमणको मिटानेवाले धर्मका उपदेश सुना ॥१२॥ जिनेन्द्र भगवान्के इसप्रकार माहात्म्यको देखकर बहुतसे तपस्वियोने अपने कुकर्मकी खूब निन्दा कर जिन भगवान्के आगे दीक्षा ले ली ॥१३॥ भगवान् चार प्रकारका संघ बनाकर तीनो लोकोको हितकारी सद्धर्मका उपदेश देते हुए देश-देशमें विहार करने लगे ॥१४॥

पार्श्वनाथ भगवान्के (समवसरणमें) स्वयम्भू आदि दश गणधर थे जोकि सात ऋद्धियोसे युक्त एवं देवोंसे पूजित थे ॥१५॥ तथा देवों असुरोसे पूजित सम्पूर्ण १४ पूर्वोके धारी मुनियोकी सख्या तीन सौ पचास थी ॥१६॥ और सभी रूपी पदार्थोंको जाननेवाले उत्तम अवधिज्ञानी मुनियोकी संख्या एक हजार चार सौ थी ॥१७॥ समस्त द्रव्य और पर्यायोको जाननेवाले केवलज्ञानी मुनियोकी संख्या एक हजार चार सौ कही गई है। १८॥ अपने इच्छित रूपोको बनानेवाले वैक्रियिक शक्तिसे युक्त मुनियोकी संख्या भी एक ही हजार थी ॥१९॥ और मनःपर्यय रूपी उत्तम ज्ञानसे युक्त यतियोंका प्रमाण सात सौ पचास था ॥२०॥ तथा जो एक ही वाक्यसे वादेच्छुक देव और मनुष्योंको जीत सकते थे, ऐसे वादी मुनियोकी संख्या छै सौ थी। और जिनेन्द्र-द्वारा

आसन् दशसहस्राणि युतानि नवभिः शतैः । १०९००
शिक्षका जिनसम्प्रोक्तमागमं विनयाऽन्विताः ॥२२॥

पोडशैव सहस्राणि १६००० ऋपीणां तु प्रमाणकम् ।
सर्वेषां पूजिता देवैर्ये तेषां कथितं खलु ॥२३॥

अष्टात्रिंशत् सहस्राणि चासन्ह्यार्या गुणाकराः । ३८००० ।
सुलोचनाऽभवत्तासु ज्येष्ठा देवेन्द्रपूजिता ॥२४॥

दर्शनज्ञानचारित्रगुणाभरणभूपितम् ।
श्रावकाणां प्रमाणं तु लक्षमेकं १००००० प्रकीर्त्तितम् ॥२५॥

त्रिहतं लक्षमेकं तु ३००००० प्रोक्तमागमवेदिभि. ।
श्राविकाणां प्रमाणं स्याद्व्रतशीलशुचिभ्रृताम् ॥२६॥

देवमानवसन्देहतमांसि जिनभास्कर. ।
वाक्यगोभिर्निचिक्षेप तमोलोकस्य सूर्यवत् ॥२७॥

दु खभास्करतप्ताय जनाय जिनतोयद. ।
धर्माऽम्बुसूर्यतप्ताय ववर्षोदकमभ्रवत् ॥२८॥

चातुर्मासोनकान् सम्यक् सप्तत्यब्दान् हितार्थिनः ।
संसारात्तारयन् भव्यान् विजहार महीं जिन. ॥२९॥

आयुष्यान्ते ततो ज्ञात्वा निर्वाणगमनक्षणम् ।
सम्मेदगिरिमारुह्य रम्यं पार्श्वजिनेश्वरः ॥३०॥

षड्विंशमुनिभि. सार्धं त्यक्त्वा विहरणं मतं ।
मासं च प्रतिमां स्थित्वा पूर्वाह्णे स सुरार्चितः ॥३१॥

श्रावणस्य सिते पक्षे सप्तम्यां च तिथौ ततः ।
भूत्वा योगी खलु ध्यायन् समुच्छिन्नक्रियात्मकम् ॥३२॥ युग्मम् ।

विनाश्य शेषकर्माणि ज्ञानाद्यैरष्टभिर्वरै. ।
गुणैर्युक्त महामान्यं समवापन्मोक्षमुत्तमम् ॥३३॥

कथित आगमको पढ़ानेवाले विनयधारी शिक्षक मुनि दश हजार नौ सौ थे। एवं देवताओसे पूजित अन्य मुनि सोलह हजार थे। और वहाँ गुणोकी खानि स्वरूप आर्यिकाएं अड़तीस हजार थीं जिनमें इन्द्रोंसे पूज्य सुलोचना नामकी आर्यिका प्रधान थी। तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूपी गुणोसे भूषित श्रावकोका समूह एक लाख प्रमाण था। और व्रत, शील एवं आचारको धारण करनेवाली श्राविकाओका प्रमाण तीन लाख आगमके जाननेवाले मुनियोंने कहा है ॥२१–२६॥

उन जिनेन्द्र रूपी सूर्यने देवो तथा मनुष्योके सन्देह-रूपी अन्धकारको सूर्यके समान वचनरूपी किरणोसे नष्ट कर दिया ॥२७॥ जिनेन्द्र रूपी मेघने दुःखरूपी सूर्यसे तप्त प्राणियोंके लिए धर्मरूपी जल ठीक वैसे ही बरसाया जैसे सूर्यसे सन्तप्त प्राणियोके लिए बादल जल बरसाता है ॥२८॥ इसप्रकार चार महीने कम सत्तर वर्षोंतक कल्याणार्थी भव्य प्राणियोंको संसारसे पार लगाते हुए वे भगवान् पृथ्वीपर बिहार करते रहे ॥२९॥

एक समय आयुका अन्त समीप जानकर, वे पार्श्वनाथ भगवान्, निर्वाण गमनकी वेलाके लिए रमणीय सम्मेदशिखर पर्वतपर आरूढ़ हुए ॥३०॥ और विहार करना छोड़कर मान्य छब्बीस मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारणकर एक माहतक खड़े रहे और श्रावण महीनेके शुक्ल पक्षकी सप्तमीके दिन पूर्वाह्न समय देवोसे पूज्य उन भगवान्ने योग धारणकर, ध्यान करते हुए मन, वचन और कायके योगोंको निरोधकर शेष कर्मोंको नष्ट कर दिया। तथा सिद्धोके ज्ञान दर्शन आदि उत्तम आठ गुणोसे युक्त हो महासुखके स्थान उत्तम मोक्षको प्राप्त किया ॥३१–३३॥ तब सभी इन्द्र अपने-अपने आसन-कम्पनसे भगवान्का मोक्ष-कल्याणक जानकर अपनी-अपनी देवियों और अनेक प्रकारकी

### हरिणीवृत्तम्

त्रिदशपतयः शीघ्रं ज्ञात्वा स्वविष्टरकम्पनै-
र्युवतिसहिता दिव्यानीकैः समेत्य सुभक्तितः ।
सुरभिकुसुमैर्धूपैर्दीपैः सुगन्धजलाक्षतै-
र्जिनवरतनोः पूजां सम्यक् प्रचक्रुरनुत्तमाम् ॥३४॥

### स्रग्धरावृत्तम्

अग्नीन्द्रोऽपि प्रपूज्य प्रवरकुसुमगन्धादिभिर्दिव्यदेहं,
पश्चाद्दग्ध्वा स्वमौलिप्रभवसुदहनेनाक्षतैर्गन्धतोयैः ।
पश्चान्निर्वाप्य शेषां सुरगणपतयो दैत्यनागेन्द्रचन्द्राः,
संगृह्याऽत्यन्तभक्त्या प्रमुदितहृदयाः स्वर्गलोकं प्रयाताः ॥३५॥
यस्मात्पुण्यं प्रकृत्य प्रशममनुपमं दिव्यसौख्यं प्रभुज्य,
स्वर्गे भूमौ च पश्चात्त्रिभुवनपतितां प्राप्तवान् पार्श्वनाथः ।
यस्मात्पापं प्रकृत्याऽशुभगति सुचिरं दुःखमापामरश्च,
तस्माद्यः सौख्यमिच्छेदतिशयसुकृतं सन्ततं सम्प्रकुर्यात् ॥३६॥
तीर्थं देवेन्द्रपूज्यं द्विशतमनुपमं यस्य पञ्चाशतं च,
वर्षाणां वर्त्तते स्म प्रवरगुणगणैर्मोक्षसोपानभूतम् ।
नित्यं यश्चापि देवा सुरनरमहित सर्वशक्त्याऽहि भक्त्या,
तं वन्दे पार्श्वनाथं जितसकलरिपुं देवदेवं जिनेन्द्रम् ॥३७॥

### पृथ्वीवृत्तम्

जिनेन्द्रचरितं त्विदं प्रकथितं सर्वश्रेयसे,
शृणोति वरबुद्धिमान् पठति यः समाख्याति च ।
सदा सुखकरं नरो लिखति पुण्यवन्तो नराः,
प्रयान्ति खलु दिव्यमनन्तादिक्षमोक्षं पदम् ॥३८॥

इति पार्श्वनाथचरिते सारपुराणसंग्रहे भगवन्निर्वाणगमनं
नाम पञ्चमः सर्गः समाप्तः ॥

सेनाके साथ भक्तिपूर्वक वहाँ आये और जिन-भगवान्‌के शरीरकी सुगन्धित पुष्पो, धूप, दीप, सुगन्धित जल एवं अक्षत द्रव्योंसे अच्छी तरह अपूर्व पूजा की ॥३४॥ फिर अग्निकुमार देवोके इन्द्रने भगवान्‌के दिव्य शरीरकी उत्तम फूलो और चन्दनादि द्रव्योसे पूजा की तथा अपने मुकुटसे उत्तम अग्नि उत्पन्नकर उसका अग्नि-सस्कार किया। तत्पश्चात् देवेन्द्र, असुरेन्द्र, नागेन्द्र और ज्योतिषी देवोंके इन्द्र, सूर्य, चन्द्रादिने भक्तिपूर्वक अवशिष्ट अंशको इकट्ठा कर अक्षत एवं सुगन्धित जलके साथ क्षीर-सागरमे क्षेप दिया और प्रसन्नचित्त हो वे स्वर्गलोक चले गये ॥३५॥ उन भगवान् पार्श्वनाथने, चूँकि अपने पहले भवमे ही पुण्य प्रकृतिका वन्ध किया था इसलिए उन्होने स्वर्गलोक और भूतलपर अनुपम दिव्य सुखोको भोग त्रैलोक्यके स्वामी पदको प्राप्त किया था। तथा चूँकि उस शम्बर देवने प्रथम भवमे पाप प्रकृतिका वन्ध किया था इसलिए उसे वहुत समय खोटी गतियोंमे भ्रमणकर दुःख भोगना पड़ा। अतः जो अपना सुख चाहता है वह निरन्तर खूब पुण्य करता चले ॥३६॥

उत्तम अनेक गुणोसे मोक्षकी सीढ़ीके समान वना हुआ, देवेन्द्रोसे पूज्य भगवान्‌का अनुपम तीर्थकाल ढाई सौ वर्षों तक चलता रहा। और उन भगवान्‌की नित्य ही देव, असुर और मनुष्य पूजा करते रहे। मैं अपनी पूर्ण शक्ति और वड़ी भक्तिसे देवोंके देव, जिनेन्द्र, पार्श्वनाथको—जिन्होने सम्पूर्ण कर्मरूपी शत्रुओंको जीत लिया है—प्रणाम करता हूँ ॥३७॥

जिनेन्द्र भगवान्‌का यह चरित सभीके कल्याणके लिए कहा गया है। और जो उत्तमवुद्धि पुरुप इसे सुनते हैं या दूसरोंसे कहते हैं अथवा लिखते हैं वे सदा सुखदायक, अनन्त एवं दिव्य सुखवाले दिव्य अविनश्वर पदको शीघ्र ही पहुँच जाते हैं ॥३८॥

इस प्रकार पुराणसारसग्रहके पार्श्वनाथचरितमे भगवान्‌का निर्वाणगमन नामक पञ्चम सर्ग समाप्त हुआ।

---

# श्रीवर्धमानचरितम्

## प्रथमः सर्गः

जयति त्रिजगन्नाथो वर्द्धमानजिनांशुमान् ।
प्राप्तोघं भव्यपद्मानामकरोज्ज्ञानरश्मिभिः ॥ १ ॥

प्रजादुरितविच्छेदे पुण्यं रत्नोत्तमाकरम् ।
पवित्रं चरितं तस्य भक्त्या वक्ष्ये समासतः ॥ २ ॥

जम्बूनाम्ने सुधर्मेण पृष्ठते कथितं पुरा ।
पुराणं श्रूयतां सूरिपारम्पर्यक्रमागतम् ॥ ३ ॥

द्वीपेऽस्मिन्भारते वास्ये छत्राकारपुरेऽभवत् ।
यो नन्दिवर्द्धनो राजा प्रसूतिर्गुणसम्पदाम् ॥ ४ ॥

वीरमत्यां सुतस्तस्मादेव्यामजनि नन्दनः ।
नानाविद्यार्थसलिलप्रक्षालितहृदुन्नतिः ॥ ५ ॥

अर्हते मुनये तस्मै दत्त्वा राज्यश्रियं सताम् ।
संसारासारवित्रस्तो जगाम स तपोवनम् ॥ ६ ॥

स्थितो वृक्षे सतां [illegible] आनन्दितो सुपम् ।
[illegible] नरोक्षित. ॥ ७ ॥

[illegible] कान्तिर्मन्दर्या [illegible] पराम् ।
[illegible] ॥ ८ ॥

# श्रीवर्धमान चरित

तीनों लोकोंके प्रभु वे वर्द्धमान भगवान्-रूपी सूर्य सदा जयवन्त होवें जिन्होंने अपनी ज्ञानरूपी किरणोंसे भव्य जीवरूपी कमलोंको प्रसन्न-विकसित-किया है ॥१॥ उनका पवित्र जीवन-चरित जनताके पाप नष्ट करनेमें इतना पुण्यकारी है जैसे प्रजाके दारिद्र्यको नष्ट करनेके लिए उत्तम रत्नोंकी खदान। मैं उसे यहाँ संक्षेपमें कहूँगा। पहले सुधर्म गणधरने जम्बू स्वामीके पूछनेपर इस पुराणको कहा था। इसलिए आचार्य-परम्परासे आये हुए इस पुराणको आप लोग सुनें ॥२-३॥

इसी जम्बूद्वीपमें भरत क्षेत्रके छत्राकारपुरमें नन्दिवर्धन नामका राजा था जो अनेक गुणोंकी खान था ॥४॥ उसे अपनी रानी वीरमतीसे नन्दन नामका पुत्र हुआ, जिसने नाना शास्त्रोंके अर्थरूपी जलसे अपनी विशाल बुद्धिको स्वच्छ कर लिया था अर्थात् वह अनेकों शास्त्र पढ़ा था ॥५॥

एक समय वह राजा अपने योग्य पुत्रको राज्य लक्ष्मी देकर संसारकी असारतासे भयभीत हो तपोवनमें तपस्या करनेके लिए चला गया ॥६॥ और वहाँ उसके पुत्रने सज्जनोंके प्रशंसनीय चरित्रमें चलते हुए प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीका शासन किया। उसने अपने अतुलनीय गुणोंसे अपने वंशके पूर्वज राजाओंको भी अतिक्रमण कर दिया ॥७॥ उसके चन्द्रमाके समान उत्कृष्ट कान्तिको धारण करनेवाली प्रियंकरा नामकी रानी थी जिसने अपने मनोहर गुणोंसे उस राजाके चित्तको हर लिया ॥८॥ अत्यन्त अनुराग

सुखमान्वाक्यन्तौ तौ रमयन्तौ परस्परौ ।
सानुरागवरौ जेतां रतिपञ्चशराविव ॥ ९ ॥

ततो ज्ञानरुचा भिन्दन् जनाना मोहतामसम् ।
तत्राऽगमद्दृष्टिमुख्य प्रोष्ठिलो ज्ञानपारग. ॥१०॥

प्रीत्या सान्त.पुरो राजा तमभ्यर्च्य यथाविधि ।
धर्मं संश्रुत्य पप्रच्छ भवसन्ततिमात्मनः ॥११॥

सता सर्वविदः पृष्टो विनयेन महीक्षिता ।
समासेन यथावृत्तं जगाद तपसा निधि ॥१२॥

वर्षेऽस्मिञ्जाह्नवीकूले वराहमलये भवः ।
इत्यतोऽष्टमे भवे राजन्केशरी लोलकेशरः ॥१३॥

अन्यदा गगने यान्तौ शयितं तु गुहामुखे ।
तं तु जयामितगुणौ नाम्ना ददृशतुर्मुनी ॥१४॥

ज्ञानिनौ करुणावन्तावदतीर्य नभस्तलात् ।
अधः सप्तपलाशस्य तौ निषण्णौ शिलातले ॥१५॥

चारणौ पूतकरणौ हरिचोदनकारणौ ।
प्रज्ञप्तिमध्यगीपातां मन्द्रेण ध्वनिना सतीन् ॥१६॥ युग्मम् ।

त्यक्त्वाऽशुभमनोवृत्तिं तद्ध्वने· समुपागत· ।
मुनिरूपं पुरा दृष्टं चिन्तयन् समुपाविशत् ॥१७॥

स्वजन्ममुनिरूपस्य दर्शनं ते हरे शृणु ।
इत्युक्त्वोवाच वदतां वरस्तमजितञ्जयः ॥१८॥

द्वीपेऽस्मिन्पुण्डरीकिण्यां नगर्यां धर्मवत्सलः ।
धर्मस्वामीति विख्यातः सार्थवाहो बभूव य· ॥१९॥

वाले वे दोनो, नाना सुखोको भोग करते हुए रति और कामदेवके समान रमण करते हुए आपसमें एक दूसरेको ( प्रेममें ) जीतने लगे ॥९॥

अथानन्तर—एक समय वहाँ अपनी ज्ञानरूपी किरणोंसे प्राणियोके मोहरूपी अन्धकारको नष्ट करते हुए, ज्ञानके पारगामी, प्रोष्ठिल नामक सम्यग्दृष्टि मुनि आये ॥१०॥ राजाने, अपने रनिवासके साथ प्रीतिपूर्वक उनकी विधिवत् पूजा की और धर्मोपदेश सुनकर उनसे अपने पूर्वभवोको पूछने लगा ॥११॥ तव उस सज्जन राजा-द्वारा विनयपूर्वक पूछे जानेपर उन सर्वज्ञ मुनिने संक्षेपमे सब वृत्तान्त इस प्रकार कहा ॥१२॥

"हे राजन् ! तुम, अवसे आठवे भव पूर्वमे, इसी भरत क्षेत्रमे गंगा नदीके किनारे वराहमलय नामके पर्वतपर लहराती सटाओ वाले सिंह हुए थे ॥१३॥ एक समय वह सिंह गुफाके दरवाजेपर सो रहा था। तव वहाँ आकाशमार्गसे जाते हुए जय और अमितगुण नामके दो मुनियोने उसे देखा ॥१४॥ ज्ञानी एवं करुणावान् वे दोनो मुनिराज आकाशसे उतरकर एक सप्तपर्ण वृक्षके नीचे शिलापर वैठ गये ॥१५॥ और संसारको पवित्र करनेवाले उन दोनो चारण मुनियोने सिंहको प्रेरणा देनेके लिए गम्भीर ध्वनिसे उद्बोध देनेवाली ( वैराग्य उत्पन्न करनेवाली ) उत्तम गाथाएँ गाना शुरू किया ॥१६॥ उनकी उस ध्वनिको सुन, अशुभ मनोवृत्तिको छोड़कर वह सिंह वहाँ आया और यह सोचते हुए कि—इन मुनियोको मैंने पहले कभी देखा है—वहाँ वैठ गया ॥१७॥ तव अजितञ्जय नामके उत्तम वक्ता मुनिने कहा कि हे सिंह ! अपने पूर्वजन्ममें मुनिरूपके दर्शनका वृत्तान्त सुनो ॥१८॥

इसी जम्बू द्वीपकी पुण्डरीकिणी नगरीमे धर्मप्रेमी धर्मस्वामी नामका संघपति रहता था ॥१९॥ एक समय उसके साथ शाखा-

सूत्रमार्गानुगत्रास्रज्योतिर्ज्वलितविग्रहः ।
मुनिः सागरसेनाख्यः प्रययौ तेन सार्थिना ॥२०॥

दर्शनाद्दस्युसंघस्य समन्तादाकुलीकृताः ।
पलायाञ्चक्रिरे क्षिप्रं जना रत्नपुरान्तरे ॥२१॥

कालया पुरूरवं नार्या पुलिन्दं मधुके वने ।
दृष्ट्वाऽपृच्छत तन्मार्गं नष्टमार्गो निराकुलः ॥२२॥

परया दयया तस्मै कृत्वा धर्मोपदेशनम् ।
तेन दर्शितसन्मार्गो जगाम मुनिसत्तमः ॥२३॥

पापात्साधूपदेशेन विरते मार्गदर्शनात् ।
आयुष्यान्ते स सौधर्मे जज्ञे द्विजलधिस्थितिः ॥२४॥

तत्राऽमितवलैश्वर्यकान्तिज्ञानयशोद्युति. ।
अनुभूयोत्तमं सौख्यं ततोऽच्यवत नाकतः ॥२५॥

भारतेऽस्मिन्पुरे रम्ये साकेते पुण्यकर्मणः ।
वृपभस्याऽपत्यो योऽभूद् भरतो नामतः प्रिय. ॥२६॥

तस्मादनन्तमत्यां च सुतोऽजनि गुणाकरः ।
मरीचिस्तरुणादित्यमरीचिनिकरद्युति. ॥२७॥

पुरुदेवेन निष्क्रम्य परीपहपराजितः ।
[१]जन्मप्रसंविमोहेन पारिव्राज्यं व्यदत्त स. ॥२८॥

चिरकालं तप. कृत्वा कृतान्ताकृष्टजीवित. ।
बभूव ब्रह्मलोकेशो दशसागरजीवितः ॥२९॥

पुरे साकेतके नाम्नः कपिलस्य ततश्च्युत ।
द्विजातेरभवत्काल्या· पुत्रश्च जटिलाह्वयः ॥३०॥

---

१. दीर्घसंसार ।

नुसार चलनेवाले, ब्रह्मज्योतिवाले एवं देदीप्यमान शरीरवाले सागरसेन नामके मुनि ( यात्राके लिए ) चले। रास्तेमें मधु नामके वनमे चारो तरफसे भीलोके समूहने इन्हें घेर लिया जिससे सभी लोग घबड़ाकर पासके रत्नपुर नामके नगरमें भाग गये ॥२०-२१॥ पुरूरव नामके भीलको उसकी पत्नी कालीने उन मुनिको मारनेसे रोका। रास्ता भूले हुए उन मुनिराजने उसे देख उससे निराकुल भावसे रास्ता पूछा ॥२२॥ मुनिने बड़े दयाभावसे धर्मोपदेश दिया और उसके द्वारा दिखाये गये मार्गसे वे श्रेष्ठ मुनि चले गये॥२३॥ मुनिराजके उपदेशसे सच्चा मार्ग जान वह भील पापकर्मोंसे विरक्त हो गया और आयुके अन्तमे मरकर सौधर्म स्वर्गमें दो सागरकी आयुवाला देव हुआ ॥२४॥

वहाँपर अपार बल, ऐश्वर्य, कान्ति, ज्ञान, यश एवं द्युतिको पाकर उसने उत्तम सुख भोगे और फिर स्वर्गसे अवतरित हुआ तथा इसी भारतवर्षकी साकेत नामकी सुन्दर नगरीमे पुण्यशाली ऋषभदेवके प्रिय पुत्र चक्रवर्ती भरत और उसकी रानी अनन्तमतीसे उत्तम गुणोवाला पुत्र मरीचि हुआ जिसकी कान्ति ऊपर चढ़ते हुए सूर्यकी किरणोके समान थी ॥२५-२७॥ उसने भगवान् आदिनाथके साथ दीक्षा ले ली पर परीपहोंको न जीत सकनेके कारण और इस दीर्घ संसारमे आसक्ति होनेके कारण ( तपस्या छोड़कर ) परिव्राजक साधु हो गया ॥२८॥ इसके बाद चिरकालतक तप करके यमराजके द्वारा जीवन ले लेनेपर अर्थात् मृत्यु होनेपर ब्रह्मलोकका इन्द्र हुआ जहाँ उसकी आयु दस सागर की थी ॥२९॥

तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर इसी साकेत नगरीमें कपिल नामके ब्राह्मणकी काली नामकी पत्नीसे जटिल नामका पुत्र हुआ ॥३०॥ उसने परिव्राजक साधुकी दीक्षा लेकर खूब तप

पारिव्राज्यमनुप्राप्य दीक्षां कृत्वा महत्तपः ।
सौधर्मे द्विसमुद्रायुरासीन्नाकभुवां पतिः ॥३१॥

स्थूणागारे ततश्च्युत्वा भारद्वाजस्य धीमतः ।
द्विजस्य पुष्पदन्तायां पुष्पमित्रः सुतोऽभवत् ॥३२॥

पारिव्राज्यधरो भूत्वा तपः कृत्वा चिरन्तत. ।
सौधर्मे त्रिदशोऽभूच्च सागरोपमजीवितः ॥३३॥

पुरि [२]श्वेतविकाऽख्यायां च्युतोऽमितसुखात्ततः ।
अग्निभूतेः स गौतम्यां सूनुरग्निसहोऽजनि ॥३४॥

पारिव्राज्येन संचित्य पुण्यं निष्ठितजीवितः ।
सनत्कुमारकल्पेऽभूत्सुरः सप्तार्णवस्थितिः ॥३५॥

ततोऽवतीर्णो नगरे मन्दिरे सितमन्दिरे ।
सुतो गौतमकौशिक्योरग्निमित्रो बभूव सः ॥३६॥

चिरमूढ्वा धुरं धर्म्यां परिव्राजकवेषभृत् ।
सप्तोदधिसमायुष्को माहेन्द्रे विबुधोऽभवत् ॥३७॥

शालङ्कायनसंज्ञस्य द्विजातेर्मन्दिरे पुरे ।
च्युतोऽतो मन्दिरायाश्च भारद्वाजोऽभवत्सुतः ॥३८॥
पारिव्राजकरूपेण समुपात्ततपोधन. ।
सप्तसागरतुल्यायुर्माहेन्द्रोऽभूत्सुरोत्तम. ॥३९॥
तत प्रत्यागतस्तीव्रमानमिथ्योपदेशः ।
चिरं ससार संसारे त्रसस्थावरयोनिषु ॥४०॥

## शिखरिणीवृत्तम्

स संसारारण्यं भवनियुतनानाविषरुजा,
जरावल्लिस्यूतं व्यसनभुजगं रुग्वनचरम् ।

२ सूतिका, श्वेतिका इति उत्तरपुराणप्रतिलिपिषु पाठः ।

किया और अन्तमें मरकर सौधर्म स्वर्गमें देवोंका इन्द्र हुआ जहाँ उसकी आयु दो सागरकी थी ॥३१॥ इसके बाद वहाँसे च्युत होकर स्थूणागार नामके नगरमे विद्वान् ब्राह्मण भारद्वाजकी पत्नी पुष्प दन्तासे पुष्यमित्र नामका पुत्र हुआ ॥३२॥ वहाँ भी वह परिव्राजक साधु हो गया और बहुत समय तक तपश्चर्या करके सौधर्म स्वर्गमे देव हुआ। फिर सागर पर्यन्त वहाँ के अमित सुखोंको भोगकर वहाँसे च्युत हो श्वेतम्बिका नामके नगरमें अग्निभूति ब्राह्मणकी पत्नी गौतमीसे अग्निसह नामका पुत्र हुआ ॥३३-३४॥ उसने परिव्राजक साधुका रूप धारणकर जीवन विताया और अन्तमें सनत्कुमार स्वर्गमें सात सागरकी आयुवाला देव हुआ ॥३५॥ इसके वाद वहाँसे अवतरित हो श्वेत भवनो वाले मन्दिर नामके नगरमे गौतम ब्राह्मणकी पत्नी कौशिकीसे अग्निमित्र नामका पुत्र हुआ ॥३६॥ और परिव्राजक साधुका वेप धारणकर कुधर्मके वोझको बहुत समयतक ढोकर अन्तमें माहेन्द्र स्वर्गमे सात सागरकी आयुवाला देव हुआ ॥३७॥ फिर वहाँसे च्युत हो मन्दिर नामके नगरमें शालङ्कायन नामक ब्राह्मण-पत्नी मन्दिरासे भारद्वाज नामका पुत्र हुआ ॥३८॥ फिर परि-व्राजक रूप धारण कर तप रूपी धनको प्राप्त कर अर्थात् खूब तपस्या कर अन्तमे सप्त सागरकी आयुवाला उत्तम देव हुआ॥३९॥ वहाँसे च्युत होकर वह तीव्र मान और मिथ्या उपदेशोके कारण इस संसारमें अनेक त्रस और स्थावर योनियोंमें वहुत समयतक घूमता फिरा ॥४०॥

इस तरह भगवान् महावीरके उस जीवने जरारूपी लताओंसे भरे हुए, व्यसनरूपी सर्पों और रोगरूपी वनचर जानवरोंसे व्याप्त, महादुर्गतिरूपी पर्वतवाले, कुनयरूपी खोटे रास्ते तथा मृत्युरूपी सिंहोंसे भरे इस संसाररूपी जंगलमें अति उन्मार्ग ज्ञानी

वृहद्दुर्गात्यद्रिं कुनयकुपथं मृत्युमृगपं,
प्रविश्यात्युन्मार्गं प्रभुरनुबभूवार्त्तिमतुलाम् ॥४१॥

असद्वृत्तैर्जीवैः प्रविगलितपुण्याऽमृतरसै-
र्न शक्यं यत्प्राप्तुं जननबहुकोटीषु सुचिरात् ।
तदापन्मानुष्यं घननिचितपापोपशमनात्,
कथञ्चित् सद्रत्नं निपतितमिवाऽन्तर्जलनिधेः ॥४२॥

इति वर्द्धमानचरित्रे पुराणसारसंग्रहे अर्थाख्यानसंयुते देव-
सङ्घस्य कृतौ प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥

---

होकर प्रवेश किया और अनेक भवोमें मिले हुए अनेक प्रकारके विषैले रोगोंसे अतुलनीय दुखोका अनुभव किया ॥४१॥ खोटे चरित्रवाले जोव-जिनका कि पुण्यरूपी अमृत रस एकदम गलित हो गया है-बहुत समयतक नाना जन्मोमे भी जिस मनुष्य योनि को नहीं पा सकते, उसे यह जीव, पापराशिके उपशम होने पर ठीक वैसे ही पा लेता है जैसे कोई समुद्रके भीतरसे निकलकर वाहर पड़े हुए उत्तम रत्नको पा लेता है ॥४२॥

इसप्रकार अर्थाख्यानसग्रहसे युक्त पुराणसग्रहके वर्धमानचरित्रमे-जो कि देवसघके लिए बनाया गया था-प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ।

---

# द्वितीयः सर्गः

अथेह भारते वर्षे पुरे राजगृहे शुभे ।
शाण्डिल्यायनविप्रोऽभूद्यो रतो धर्मकर्मसु ॥ १ ॥

पाराशर्यां सुतस्तस्माज्जातः स्थावरनामभृत् ।
पारिव्रज्यात्तपुण्येन महेन्द्रं कल्पमाश्रयत् ॥ २ ॥

सप्ताऽर्णवसमं कालमुपभुज्य परं सुखम् ।
अवसानं गते पुण्ये च्युतोऽतृप्तसुखस्ततः ॥ ३ ॥

पुरे राजगृहे राज्ञी विश्वभूतेर्यशस्विनः ।
जयिन्यास्तनयो जज्ञे विश्वनन्दी गुणालयः ॥ ४ ॥

विशाखभूतये भ्रात्रे राज्यलक्ष्मीं कनीयसे ।
सुददौ यौवराज्यं च सूनवे विश्वनन्दिने ॥ ५ ॥

आचार्यश्रीधरोपान्ते राजभिस्त्रिशतैः सह ।
दीक्षां विरहितग्रन्थां दधे श्रीमाननुत्तमाम् ॥ ६ ॥

यौवराज्यश्रिया कान्तो विश्वनन्दिरतिप्रियः ।
सहस्राम्रवनं श्रीमान्ययौ सान्तःपुरोऽन्यदा ॥ ७ ॥

सर्वर्त्तुसुखदे तस्मिन्सर्वर्त्तुकुसुमाकरे ।
स रराम परैर्भोगैः समेतो दयिताजनैः ॥ ८ ॥

लक्ष्मणायां महादेव्यां नृपतेस्तनयोऽभवत् ।
नाम्ना विशाखनन्दीति च कान्तः शरदिन्दुवत् ॥ ९ ॥

स साम्यो युवराजेन गुणरूपविभूतिभिः ।
उद्यानमस्मदीयं तन्निषेवाकाममद्रुपत् ॥ १० ॥

## द्वितीय सर्ग

अथानन्तर वह जीव इसी भारतवर्षके उत्तम राजगृह नामके नगरमें धर्म कर्ममें रत शाण्डिल्यायन नामके ब्राह्मण और उसकी पत्नी पाराशरीसे स्थावर नामका पुत्र हुआ। और परिव्राजक बनकर पुण्योपार्जन कर महेन्द्र स्वर्ग गया जहाँ उसने सात सागर तक उत्तम सुख भोगे। फिर पुण्य क्षय होनेसे वहाँके सुखोंमें अतृप्त होता हुआ च्युत हुआ ॥१–३॥ और राजगृह नगरमें यशस्वी राजा विश्वभूतिकी रानी जयिनीसे गुणवान् विश्वनन्दी नामका पुत्र हुआ ॥४॥

एक समय राजा विश्वभूतिने अपने छोटे भाई विशाखभूतिको राज्यपद देकर और अपने पुत्र विश्वनन्दिको युवराज पद देकर आचार्य श्रीधरके पास तीन सौ राजाओंके साथ सब परिग्रह छोड़कर श्रेष्ठ जैनी दीक्षा ले ली ॥५–६॥ किसी समय युवराजपद-से विभूषित, कामदेवके समान वह विश्वनन्दि अपने रनिवासके साथ सहस्राम्रवनमें क्रीडा करनेके लिए गया ॥७॥ और सब ऋतुओंमें सुख देनेवाले, तथा सब ऋतुओंके फूलोंसे भरे हुए उस उद्यानमें वह स्त्रियोंके साथ उत्तम भोगोंसे क्रीड़ा करने लगा ॥८॥

इधर राजा विशाखभूतिकी महारानी लक्ष्मणासे शरत्कालीन चन्द्रमाके समान मनोहर विशाखनन्दी नामका पुत्र था ॥९॥ वह गुण, रूप और वैभवमें युवराज विश्वनन्दीके समान था। एक समय विश्वनन्दी उद्यानमें क्रीड़ा कर रहा था उस समय उसे वहाँ जाने न दिया गया इससे वह रुष्ट हो गया ॥१०॥ और अपनी

तदुक्त्वात्मन उद्यानमयाचत स मातरम् ।
सापि क्षितिभुजं तस्य यद्ययाचे सकारणम् ॥११॥

अनुसत्य गिरं तस्या मन्त्रयित्वा स मन्त्रिभिः ।
समाहूय जगादेत्थं सादरं विश्वनन्दिनम् ॥१२॥

अस्माकं विषयप्रान्तं द्विषांचक्रैरुपप्लुतम् ।
उद्योगं तद्विनाशाय करिष्ये त्वरयाऽधुना ॥१३॥

अप्रमादेन भवता लोकचारित्रवेदिना ।
रक्ष्यो देशः सह पुरा पुरा दृष्टसुखोदयः ॥१४॥

इत्येवं निगदन्तं तं तदनुष्ठानमानसः ।
विज्ञाप्य सादरं कृच्छ्रात्तदनुज्ञामलब्ध सः ॥१५॥

बलेन महता तेन विश्वनन्दी समावृतः ।
आ देशान्तं ययौ शीघ्रं निसर्गप्रियसंयुगः ॥१६॥

तदन्तरे तदापास्य योषितो विश्वनन्दिनः ।
राजा प्रावेशयत्पुत्रमाक्रीडं नन्दनोपमम् ॥१७॥

ततः प्रत्यागतः पश्यन्परचक्रनिपीडिनम् ।
विदित्वा तत्कृतं सर्वं रुषा जज्वाल वर्तिवत् ॥१८॥

उद्यानतिलकं स्तम्भं श्रिया दीप्तं शिलामयम् ।
बभञ्ज कूर्परेणाशु कपित्थं च व्यपातयत् ॥१९॥

दर्शयित्वाऽऽत्मनः शक्तिं स निर्वेदमुपागतः ।
सम्भूतोपान्तिके दीक्षामनवद्यामुपाददे ॥२०॥

अन्यदा मासचारित्रः पारणार्थं महात्मना ।
मुनिर्मासोपवासान्ते विवेश मथुरां पुरीम् ॥२१॥

माँसे कहकर उद्यानमें प्रवेश करनेकी याचना की। उसकी माताने भी राजासे कारण बतलाकर उसे उद्यानमें जाने देनेको माँग की ॥११॥ तब राजाने रानीकी बातको मानकर अपने मन्त्रियोंसे सलाह ली और विश्वनन्दीको प्रेमपूर्वक बुलाकर इस प्रकार कहा ॥१२। कि हे युवराज ! हमारे देशके सीमान्त भागमें शत्रु-दल उपद्रव मचा रहा है। इस समय उसे जल्दी ही नष्ट करनेके लिए मैं चढ़ाई करूँगा ॥१३॥ तुम लोक-व्यवहारको जानते हो इसलिए प्रमादरहित होकर नगरवासियोंके साथ बहुत समयसे सुख-समृद्धिसे सम्पन्न अपने देशकी रक्षा करो ॥१४॥ इसप्रकार राजाके कहनेपर स्वयं ही उस कार्यको करनेकी इच्छासे अर्थात् स्वयं ही शत्रुका नाश करनेकी इच्छासे विश्वनन्दीने विनयपूर्वक राजासे निवेदन किया और किसी तरह उससे आज्ञा पा ली॥१५॥ तब स्वभावसे युद्धका प्रेमी वह विश्वनन्दी बड़ी भारी सेनाके साथ शीघ्र ही देशके सीमाप्रान्तको चला गया ॥१६॥

इस बीच राजाने विश्वनन्दीकी पत्नियोंको नन्दनवनके समान उस बगीचेसे हटाकर वहाँ अपने पुत्रको क्रीडाके हेतु जाने दिया ॥१७॥ इसके बाद विश्वनन्दी शत्रुदलकी बाधाको देखते हुए लौट आया और यह सब इन सब लोगोंका रचा हुआ जाल समझकर क्रोधसे दीपककी बत्तीके समान जलने लगा ॥१८॥ और अपने हाथकी केहुनीसे पत्थरके बने शोभनीय उद्यानतिलक नामक खम्भेको उखाड़ दिया और कैथेके वृक्षको ( जहाँ विशाखनन्दी छिपा था ) गिरा दिया ॥१९॥

इस प्रकार अपनी शक्तिको दिखलाकर वह संसारसे विरक्त हो गया और सम्भूत नामके मुनिराजके पास पाप रहित (दैगम्बरी) दीक्षा ले ली ॥२०॥ एक दिन वे चरित्रवान् विशालहृदय मुनिराज एक मासके उपवासके बाद पारणा करनेके लिए मथुरा नगरीमें

प्रविष्ट हुए ॥२१॥ बहुत समयतक उग्रतप करनेके कारण उनका शरीर कृश हो गया था। वे शान्त मुनिराज गायके बछड़ेके धक्के-से गिर पड़े ॥२२॥ वहाँ लक्ष्मणाका वह पुत्र विशाखनन्दी एक वेश्याके मकानमे खड़ा हुआ उन्हें देख रहा था। तथा उनके अमानुषिक बलके नष्ट होनेसे वह बहुत जोरोसे हँसा ॥२३॥ उसके इन अप्रिय वचनोको सुनकर उन मुनिराजको बड़ा क्रोध आया और वे पारणा बिना किये ही लौट गये। अन्तमे निदान पूर्वक शरीरको छोड़कर महाशुक्र स्वर्गमे देव हुए ॥२४॥ वहाँ अणिमा आदि आठ ऐश्वर्योंसे युक्त हो सोलह सागरकी आयु पाई और अपने पूर्व पुण्योदयसे नाना भोगोको भोगकर वहाँसे च्युत हुआ ॥२५॥

अथानन्तर इसी भारतवर्षके पोदनपुर नामक प्रसिद्ध नगरमे राजा प्रजापतिकी प्रभावशालिनी मृगावती रानीसे त्रिपृष्ठ नामका पुत्र हुआ। और पूर्वजन्ममें जो राजा विश्वभूतिका जीव था वह राजा प्रजापतिकी बड़ी रानी जयावतीसे विजय नामका पुत्र हुआ ॥२६-२७॥ जयावतीके पुत्र विजय और त्रिपृष्ठ दोनो बड़े प्रतापशाली थे, उन दोनोंमे बड़ा स्नेह था तथा बड़ा पराक्रम और बड़ी शोभा थी ॥२८॥

पूर्वजन्ममे विश्वनन्दीका चचेरा भाई विशाखनन्दी—जो कि बड़ा मौजी था—अश्वग्रीव नामका विद्याधर हुआ। वह त्रिपृष्ठका शत्रु था ॥२९॥ उसे मारकर वे दोनों भाई इस भारतवर्षमें प्रथम नारायण और बलदेव हुए और अपने सब प्रकारके रत्नोको पाकर बहुत समयतक राज्यलक्ष्मीका भोग किया ॥३०॥ काम भोगोमे तृप्त न होता हुआ वह त्रिपृष्ठ नारायण अन्तमे मरकर तीव्र एवं बहुत कष्टोकी खानि वाले अर्थात् अनेक कष्टोसे भरे हुए सातवें नरकमे गया ॥३१॥ वहाँ उत्कृष्ट आयु अर्थात् तैंतीस सागरकी

उत्कृष्टजीवितो दुःखं प्राप्य तस्माद्विनिर्गतः।
अस्या रोधसि गङ्गाया जात. सिंहगिरौ हरिः ॥३२॥
अर्जयित्वा महत्पापं जीवितान्तमुपेतवान्।
एकार्णवोपमायुष्को नरके प्रथमेऽजनि ॥३३॥
दुस्तरां वेदनां तस्मिन्ननुभूतगरीयसीम्।
तस्मान्निर्गत्य संजात. सोऽयं त्वमिह केशरी ॥३४॥
संसृतिः सिंह संसारे सुखासुखविपाकिनी।
त्वयैव सुचिरं कालमनुभूता स्वकर्मणा ॥३५॥
तदसत्यजमिथ्यात्वं पापतो विरतो भव।
धर्मे निधेहि चित्तं त्वं यदीच्छेर्निर्गमं भवात् ॥३६॥
आवाभ्यां श्रीधरस्यान्ते श्रुतं केवलवेदिन.।
दशमे जनने सिंह भवितासि जिन. किल ॥३७॥
इत्युक्त्वा सम्मुदोत्कर्षकणिकाविलचक्षुषे।
सद्दृष्टिं हरये दत्त्वा गतौ चक्रे मनो मुनी ॥३८॥

## मालिनीवृत्तम्

सुरयुवतिकुचान्तालीनगन्धादिवासं
कुवलयदलरागस्यामल वायुमार्गम्।
स्वतनुविसृतपिङ्गज्योतिषाऽभ्युज्वलन्तौ
शमितकलुषवृत्ती चारणावाश्रयेताम् ॥३९॥

## हरिणीवृत्तम्

रहितदुरितस्रस्तोभ्रान्तेर्भवार्णवसंकटे
शुभपरिणतिः प्रत्याख्यानं प्रगृह्य यथाविधि।
मरणवशग सौधर्मस्य प्रेयाय मनोरम
शमुदधिजले मग्नो देवो विभूव हरिध्वज. ॥४०॥

इति वर्द्धमानचरिते पुराणसंग्रहे सम्यग्दर्शनावलम्बो नाम
द्वितीय सर्ग समाप्त. ॥

आयु पाकर अनेक दुख भोगकर वहॉसे निकला और इस गंगाके तटपर सिंहगिरि नामक पर्वतपर सिंह हुआ। और बहुत पाप इकट्ठेकर मरा तथा प्रथम नरकमे एक सागरकी आयुवाला नारकी हुआ। वहॉ उसने कठिनसे कठिन भारी वेदनाओका अनुभव किया और वहॉसे निकलकर वह यहाँ तुम–सिंह–हुए हो ॥३२–३४॥ हे सिंह ! इस संसारमे सुख और दुःखके विपाकस्वरूप परिवर्तनको तुमने अपने कर्मोके आधीन होकर बहुत काल तक भोगा ॥३५॥ इसलिए मिथ्या बातोसे उत्पन्न मिथ्यात्वरूपी पापसे तुम विरक्त हो जाओ और यदि इस संसारसे निकलना चाहते हो–छुटकारा चाहते हो–तो धर्ममे चित्त लगाओ ॥३६॥ हे सिंह ! हम दोनो मुनियोने श्रीधर नामक केवलीके पास सुना है कि तुम अबसे दशमें भवमें तीर्थंकर होओगे ॥३७॥

इस प्रकार कहकर तथा अत्यन्त आनन्दके कारण सजल नेत्रवाले उस सिंहको सम्यग्दर्शन देकर उन जय और अमित मुनिने जानेकी इच्छा प्रकट की ॥३८॥

अपने शरीरसे निकलती हुई पीली ज्योतिसे प्रकाशमान, कलुषित परिणामोंसे रहित, वे दोनो चारण मुनि, उस आकाश मार्गसे जाने लगे जो कि देवाङ्गनाओके स्तनोपर लगे हुए सुगन्धित द्रव्योसे सुगन्धित तथा नीले कमलोकी कान्तिके समान निर्मल था ॥३९॥

वह सिंह भी पापसे रहित, भवसागरके संकटमे घूमनेसे भयभीत एव शुभ भावनाओंवाला हो विधिवत् प्रत्याख्यान कर मरा और सौधर्म स्वर्गमें मनोरम शान्ति पा हरि-ध्वज-सिंहकेतु-नामका देव हुआ तथा वहॉ एक सागरकी आयु पाई ॥४०॥

इस प्रकार पुराण-सार[illegible] वर्धमानचरित[illegible] [illegible]

नामक [illegible] सर्ग समाप्त हुआ।

---

# तृतीयः सर्गः

च्युत्वाऽतो धातकीखण्डे पूर्वमन्दरपूर्वगे ।
विदेहे मङ्गलावत्यां विजयार्द्धोत्तरे तटे ॥१॥
कनकप्रभपुरेशस्य कनकाभमहीपतेः ।
देव्यां कनकमालायां सुतोऽभूत्कनकोज्ज्वलः ॥२॥
राजतां विपुलां प्राप्य स स्ववस्तुविभूतये ।
कनकप्रभया भोगान् बुभुजेऽनिन्दितश्रिया ॥३॥
कदाचिन्मन्दरोद्याने प्रियमित्रमुनीश्वरात् ।
श्रुत्वा धर्मं स जग्राह सम्यग्दर्शनमुत्तमम् ॥ ४ ॥
सूनौ निधाय राज्यं स्वं कनकादिरथाह्वये ।
दीक्षित्वा तन्मुनेरन्ते चचार विपुलं तपः ॥ ५ ॥
कृत्वा सल्लेखनां मुख्यामन्ते लान्तवसंज्ञके ।
कल्पे त्रयोदशाब्ध्यायु सुरानन्दः सुरोऽभवत् ॥ ६ ॥
देवोऽवतीर्य साकेतनगरे च महीपतेः ।
वज्रसेनात्सुषेणायां हरिषेण सुतोऽभवत् ॥ ७ ॥
अन्यदा ससुतो धर्मं स श्रुत्वा श्रुतसागरात् ।
प्रदाय सूनवे राज्यं प्रादीक्षत तदन्तिके ॥ ८ ॥
राज्यसम्पत्तद्योर्वैधिमवाप्याल्पभवत् सुखम् ।
श्रावकीनां परावृत्ति चरन्नतिचारिणाम् ॥ ९ ॥
आयुरन्ते महाशुक्रे विमाने प्रीतिवर्द्धने ।
अभूत्प्रीतिङ्करो नाम्ना ख्यातो नाथो दिवौकसाम् ॥१०॥
षोडशोदधिसाम्यायुरनुभूय सुखामृतम् ।
पुण्यनिष्ठापरिक्षीणे विभूतिं च्युतवानतः ॥११॥

## तृतीय सर्ग

वहाँसे च्युत होकर वह देव धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वमन्दराचलके पूर्व विदेहमे मंगलावती देशके विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें कनकप्रभपुरके राजा कनकाभ और रानी कनकमालासे कनकोज्ज्वल नामका पुत्र हुआ ॥१-२॥ वहाँ उसने विशाल राज्य पाकर अपने धन और वैभवके अनुकूल ही अपनी उत्तम शोभावाली रानी कनकप्रभाके साथ नाना प्रकारके भोग भोगे ॥३॥

किसी समय उसने मन्दर नामक उद्यानमे प्रियमित्र नामके मुनीश्वरसे धर्मोपदेश सुनकर उत्तम सम्यग्दर्शन धारण किया ॥४॥ ओर कनकरथ नामक अपने पुत्रको राज्य देकर उन्हो मुनिके पास दीक्षा लेकर महान् तप करने लगा ॥५॥ फिर प्रधान संल्लेखनाको धारण कर लान्तव नामक स्वर्गमें तेरह सागरकी आयुवाला देवोको आनन्द देनेवाला देव हुआ ॥६॥ तत्पश्चात् वहाँसे अवतीर्ण हो अयोध्या नगरीके राजा वज्रसेन और रानी सुषेणासे हरिषेण नामका पुत्र हुआ ॥७॥ एक दिन पुत्रके साथ वज्रसेन राजाने श्रुतसागर मुनिसे धर्मोपदेश सुना और अपने पुत्रको राज्य देकर उनके पास दीक्षा ले ली ॥८॥ हरिषेणने राज्यके साथ सम्यक्त्वको भी प्राप्त कर और अतिचाररहित श्रावकोके उत्तम व्रतोका पालन करते हुए नाना सुख भोगे ॥९॥ फिर आयु समाप्त होने पर महाशुक्र स्वर्गके प्रीतिवर्द्धन नामक विमानमे देवोका स्वामी प्रीतिङ्कर नामका देव हुआ ॥१०॥ वहाँ उसने सोलह सागर तक सुखामृतका पान किया और पुण्योदयके क्षीण होनेपर वहाँसे च्युत हुआ ॥११॥

धातकीखण्डपूर्वस्थमन्दराचलपूर्वगे ।
विदेहे पुष्कलावत्यां विषये जनतासुखे ॥१२॥

नगर्यां पुण्डरीकिण्यां सुमित्राख्यमहीपते ।
सुव्रतायामभूत्पुत्र. प्रियमित्रो गुणाकर. ॥१३॥

क्षेमङ्करजिनस्यान्ते धर्मं श्रुत्वा महीपति ।
दत्त्वा राज्यं स्वपुत्राय शिष्योऽभूत्तस्य धीमत. ॥१४॥

नृपश्रियं परा बिभ्रत्साम्राज्यं समवाप सः ।
निजपुण्यवशीभूतनृपविद्याधरामरम् ॥१५॥

सुरविद्याधरानीतां भोगश्रियमनुत्तमाम् ।
उपभुज्य चिरं भूमौ द्वितीय इव वासव. ॥१६॥

राजराजोऽन्यदा भोगसमास्वादविरक्तधी ।
सूनवेऽरिञ्जयायेमान्ददौ प्रीतो नृपश्रियम् ॥१७॥

तत. क्षेमङ्करस्याऽन्ते दीक्षामक्षतपौरुष ।
साकं राजसहस्रेण प्रपेदे क्लेशभञ्जिनीम् ॥१८॥

तप. कृत्वा चिर कालमाराधितचतुष्टय ।
उदपादि सहस्रारे विमाने रुचकाह्वये ॥१९॥

अष्टादशसमुद्रायुस्तत्र सूर्यप्रभ सुर ।
बुभुजे विषयप्रीतिजननीं भोगसम्पदम् ॥२०॥

कृतान्तदृष्टिपातेन निरस्तविमलोदय ।
ततश्च्युतो महीपाल सोऽयं [illegible] नामतः ॥२१॥

इत्येवं जन्मसन्तानो भवतो गदितो मया ।
तं [illegible] लघु प्राप्य [illegible] परमपदम् ॥२२॥

तथा धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व मन्दराचलके पूर्व विदेहमे जनताको सुख देनेवाले पुष्कलावती देशमे पुण्डरीकिणी नगरीके राजा सुमित्र और रानी सुव्रतासे अनेक गुणोवाला प्रियमित्र नाम का पुत्र हुआ ॥१३॥ एक समय क्षेमंकर तीर्थंकरके समीप धर्मोपदेश सुनकर वह राजा अपने पुत्रको राज्य देकर उन विद्वान् मुनिराजका शिष्य हो गया ॥१४॥ प्रियमित्रने उत्तम राज्यलक्ष्मी को धारण कर ऐसे साम्राज्य-पदको पाया जिसमे उसके पुण्यसे सभी राजा, विद्याधर और देवता उसके वशीभूत थे अर्थात् उसने चक्रवर्ती पद पाया ॥१५॥ उसने देवताओ और विद्याधरो-द्वारा लाई गई अत्युत्तम भोग-लक्ष्मीका बहुत समयतक, पृथ्वीमे दूसरे इन्द्रके समान उपभोग किया ॥१६॥

एक दिन वह चक्रवर्ती विषय-भोगोसे विरक्त हो गया और अरिञ्जय नामके अपने पुत्रको सुखपूर्वक राज्य पद दे दिया॥१७॥ तथा पूर्ण पुरुषार्थी उस राजाने क्षेमङ्कर मुनिराजके पास एक हजार राजाओके साथ पापोंको नष्ट करनेवाली दीक्षा ले ली ॥१८॥ उस राजाने बहुत समयतक तपस्या की और चार आराधनाओंका आराधन कर सहस्रार स्वर्गके रुचक नामक विमानमे देव हुआ ॥१९॥ वहॉ उसका नाम सूर्यप्रभ था और अठारह सागरकी आयु पर्यन्त उसने विषयोमे प्रीति उत्पन्न करनेवाली भोग-सम्पत्तिका भोग किया ॥२०॥ फिर यमराजके दृष्टिपातसे अर्थात् आयु समाप्त होनेपर पुण्योदय क्षीण होनेसे वह वहॉसे च्युत हुआ और हे राजन्, वह यहॉ तुम ही (नन्दन नामके राजा) हुए हो[1] ॥२१॥

इस प्रकार मैंने (प्रोष्ठिलने) तुम्हारे पूर्व जन्मोकी परम्परा कह दी । अब इसको भलीभॉति समझकर कर्मोंके बोझको हल्का

१—यह कथानक प्रथम सर्गके तेरहवें श्लोकसे बराबर चल रहा है ।

श्रुतवांस्तद्गिरं श्रव्यां ज्ञात्वा वृत्तिं जनार्णवे ।
राजा विरक्तराज्यश्रीस्तं मुनिं समपूजयत् ॥२३॥
ततः प्रियङ्कराकान्तसूनवे गुणभागिने ।
आनन्दाय ददौ राज्यं समस्तगुणशोभितम् ॥२४॥
सत्तीर्थं वासुपूज्यस्य तस्यालंकुर्वतो गुणैः ।
उपान्तिके महाराजो व्यजहाद् ग्रन्थसंहतिम् ॥२५॥
अभ्यस्यैकादशाङ्गानि संयमेन महामतिः ।
चक्रे तपांसि घोराणि कर्मराशि जिगीषया ॥२६॥
आवध्य तीर्थकृन्नाम कर्मषोडशकारणैः ।
प्रायोपगमनेनान्ते जहौ योगतनुं तनुम् ॥२७॥
विमाने चाच्युते कल्पे स पुष्पोत्तरनामनि ।
द्वाविंशत्यब्धिसाम्यायुर्जातस्त्रिदशसत्तमः ॥२८॥

## मालिनीवृत्तम्

दिनकरकररागद्वेषणात्मीयतेषु
ज्वलितवलयमाला मौलिलीलोत्तमश्रीः ।
सुकृतफलविपाकप्राप्तदेवाधिपत्यो
रुचिरगुणकलापो ज्ञानशक्तिर्बभूव ॥२९॥
सुखरसनिचिताङ्गै रम्यगन्धादिशोभै
स्मरशरसितधारापातलक्ष्यत्वजातैः ॥
सकलगुणकलै स्वैश्चारुदेवीसहस्रैः
श्चिरमरमत भोगास्वादसंसिक्तचित्त ॥३०॥

इति वर्द्धमानचरिते पुराणसारसंग्रहे भगवद्भवाभिधानो नाम

कर मोक्षपद पानेके लिए उत्साह करो ॥२२॥ तब उनकी मनोहर वाणीको सुनकर और भवसागरमें भ्रमणकी बातको जानकर वह राजा राज्यलक्ष्मीसे विरक्त हो गया और उन मुनिराजकी पूजा की। फिर प्रियङ्करा रानीसे उत्पन्न गुणवान् अपने पुत्र आनन्दको सब गुणोंसे सम्पन्न राज्य दे दिया ॥२३-२४॥ वह भगवान् वासुपूज्य तीर्थंकरका तीर्थकाल था, उसमें गुणोंसे सुशोभित उन प्रोष्ठिल मुनिराजके,समीप उसने सब प्रकारका परिग्रह छोड़कर दीक्षा ले ली ॥२५॥ और संयम धारणकर उस महामतिने ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया तथा कर्मराशिको जीतनेकी इच्छा से घोर तपस्या की ॥२६॥ तथा दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंकी भावना करके नामकर्मकी तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया और प्रायोपगमन संन्यास धारण कर तपस्यासे क्षीण शरीरका त्याग कर दिया ॥२७॥ फिर अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर नामक विमानमें बाईस सागरकी आयुवाला देवोंका इन्द्र हुआ ॥२८॥

वह इन्द्र सूर्यकी किरणोंको लज्जित करनेवाले चमकीले हाथके कगन, गलेकी माला और सिरके मुकुटसे अत्यन्त शोभित था। उसने अपने पुण्य कर्मके उदयसे देवेन्द्र पदको पाया था तथा वह मनोहर गुणसमूहों व ज्ञानशक्तिसे युक्त था ॥२९॥ वहाँ उस देवने भोगोंके आनन्दमें आसक्त चित्त होकर बहुत समयतक सुखरससे भरे हुए अंगोंवाली रमणीय सुगन्धित द्रव्योंसे सुशोभित, तथा कामदेवके बाणोंकी तीक्ष्णधाराके बराबर गिरनेसे निशानके समान, एवं अनेक गुणों और कलाओंसे सम्पन्न, सहस्रों देवाङ्गनाओंके साथ भोग भोगे ॥३०॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके वर्धमानचरितमें भगवानके भवों-का कथन नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

---

## चतुर्थः सर्गः

अथाऽस्मिन् भारते वर्षे विदेहेषु महद्धिषु ।
आसीत्कुण्डपुरं नाम्ना पुरं सुरपुरोत्तमम् ॥ १ ॥

सिद्धार्थस्तत्र राजासीत्प्रजाकान्ततराकृति ।
प्रसह्य भूक्षिता हर्त्ता रत्नानां दैवसम्पदाम् ॥ २ ॥

आसीत्तस्य महादेवी दयिता प्रियकारिणी ।
रूपकान्तिविभूत्याद्यैर्जयन्ती देवयोषित ॥ ३ ॥

साऽन्यदा सकलश्रीभि. समालिङ्गितविग्रहा ।
शिरीषमृदुसंस्पर्शशयने शयिता सुखम् ॥ ४ ॥

वारणं गोपतिं सिंहमभिषेकयुतां श्रियम् ।
दामनी शशिनं सूर्यं मत्स्ययुग्मं घटद्वयम् ॥ ५ ॥

नलिनीं विकचाम्भोजां सागरं हरिविष्टरम् ।
विमानं भवनं दीप्तरत्नराशिं हुताशनम् ॥ ६ ॥

स्वप्नानेतान्क्षपान्ते तां दर्शयित्वा पृथक्-पृथक् ।
षण्मासप्राप्तदेवेन्द्रपूज. पुष्पोत्तराधिप. ॥७॥

अवतीर्य ततो लोकान्कम्पयन् पुण्यशक्तित ।
सितवारणरूपेण दिव्य प्राविशदाननम् ॥८॥ चतुर्थकम् ।

सा प्रबुद्धा स्वयं देवी समलंकृतविग्रहा ।
राज्ञे न्यवेदयत्सर्वंसपूर्वां बिभ्रती रुचम् ॥९॥

स जगाद फलं तेषां संजाताङ्गरुहोत्तम ।
गुरोस्त्रिभुवनस्याऽऽवां यास्यावो गुरुतामिति ॥१०॥

# चतुर्थ सर्ग

अथानन्तर-इसी भरत क्षेत्रमें विदेह नामका समृद्धिशाली देश है वहाँ देवोंके नगरोसे भी बढ़कर कुण्डनपुर नामका नगर था ॥१॥ उस नगरमे जनताके बीच सुन्दर आकृतिवाला सिद्धार्थ नामका राजा था जिसने अपनी शक्तिसे बड़े-बड़े राजाओंको, दैव सम्पत्तियोंको एव रत्नोको प्राप्त किया ॥२॥ उसकी प्रियकारिणी नामकी प्यारी पटरानी थी जिसने रूप, कान्ति, वैभव आदिसे देवाङ्गनाओंको जीत लिया था ॥३॥

एक समय वह श्री ह्री आदि देवियोसे अच्छी तरह सेवित हो शिरीषपुष्पके समान कोमल शय्यापर सुखसे सो रही थी ॥४॥ उस समय उसे रात्रिके अन्तमें गज, वृषभ, सिह, अभिषेक की जाती हुई लक्ष्मी, दो मालाएँ, चन्द्र, सूर्य, मीनयुगल, दो कलश, खिले कमलोसे भरा सरोवर, समुद्र, सिंहासन, विमान, धरणेन्द्रका भवन, जगमगाती हुई रत्नराशि और निर्धूम अग्नि- इन सोलह स्वप्नोको अलग-अलग दिखलाकर, आयुके अन्तिम छह माहोमे देवेन्द्रोसे पूजित वह पुष्पोत्तर विमानका स्वामी इन्द्र स्वर्गसे अवतीर्ण हुआ और अपनी पुण्यशक्तिसे तीनो लोकोको कम्पित करता हुआ श्वेत हाथीका रूप धारण कर उस माताके मुखमे प्रविष्ट हुआ ॥५-८॥ यह देख वह रानी स्वयं जाग गई और शरीरको अलंकारोसे विभूषित कर मनोहर रूप धारण कर राजाके पास गई और उन सोलह स्वप्नोको निवेदन करने लगी ॥९॥ तब हर्षसे पुलकित हो उस राजाने स्वप्नोंके फलको कहा कि हमलोग तीनो लोकके गुरु-तीर्थंकर-के गुरु अर्थात् माता-पिता होंगे ॥१०॥

वसूनां सार्धकोटीकास्तिस्त्र. कोटीर्दिने दिने ।
मासान् पञ्चदश जन्म धनदोऽपातयद्गृहे ॥११॥

जातेरुपस्थिते काले दिशि प्राच्यामिवांशुमान् ।
अजायत जिनस्तस्यां कम्पयञ्जगतां त्रयम् ॥१२॥

तदाऽशेषा. प्रजास्तुष्टाः प्रसेदु. सकला दिश. ।
सुरदुन्दुभयो नेदु पुष्पवर्षो दिवोऽपतत् ॥१३॥

इन्द्रा. सपदि तज्जन्म ज्ञात्वा विष्टरकम्पनैः ।
आययुस्तत्पुरं भूत्वा सदेवा' साप्सरोगणा ॥१४॥

जिनाम्बां प्रतिबिम्बेन प्रमोह्य कृतसंस्कृतिम् ।
शची जिनमुपादाय वज्रिणो निदधे करे ॥१५॥

स रराज तदाऽतीव सदुकूले करे हरे' ।
सन्ध्यातने सिताम्भोधे 'विवस्वानिव शारद ॥१६॥

धार्यमाणसितच्छत्रं लोलचामरवीजितम् ।
मन्दराग्रं निनायेन्द्रो रत्नांशुद्युतिपाटलम् ॥१७॥

उपवेश्य स तं दीप्तो विष्टरे पाण्डुकेऽमले ।
अस्नापयदपां पूर्णैर्हेमकुम्भै. पयोऽम्बुधे ॥१८॥ युग्मम् ।

तं शचीपतिसंस्कारकृतकौतुकमङ्गलम् ।
स्तुत्वा प्रणम्य देवेन्द्रा मन्दरात्पुरमागता ॥१९॥

इन्द्राणी जिनमादाय स्वपतेः करपल्लवात् ।
विन्यस्य मातुरुत्संगे व्यपनीय प्रतिरूपकम् ॥२०॥

कुवेरने भगवान्‌के गर्भमें आनेके छह माह पहले और गर्भावस्थाके नव महीनोंमें इस तरह पन्द्रह महीनो तक साढ़े तीन करोड़ रत्न भगवान्‌के माता-पिताके घर बरसाये ॥११॥ जन्म काल आने पर वे भगवान् तीन लोकोको कम्पायमान करते हुए उस मातासे ठीक वैसे ही पैदा हुए जैसे पूर्व दिशासे सूर्य उगता है ॥१२॥

उस समय सभी प्रजा संतुष्ट हो गई और सभी दिशाएँ स्वच्छ हो गईं। देवतागण दुन्दुभि बाजे बजाने लगे और आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी ॥१३॥ इन्द्रोंने अपने-अपने आसन कम्पनेसे शीघ्र ही भगवान्‌के जन्मको जान लिया और बड़ी विभूतिसे देवो और देवाङ्गनाओके साथ उस नगर में आये ॥१४॥

इन्द्राणी माताका संस्कार कर तथा उसे मोहनिद्रामें सुला पासमे मायामयी बालकको रखकर भगवान्‌को उठा ले गई और उसे इन्द्रके हाथमे रख दिया ॥१५॥ वस्त्रोंसे भूषित इन्द्रके हाथमे वे भगवान् अत्यन्त शोभित हुए जैसे कि संध्याके समय स्वच्छ समुद्रपर शरद्‌कालीन सूर्य सुशोभित होता है ॥१६॥ इसके बाद इन्द्र, भगवान्‌के ऊपर श्वेत छत्र लगाकर चांवरोंको हिलाता हुआ उन्हे रत्नोंकी किरणोसे गुलाबी रंगवाले सुमेरुपर्वतपर ले गया ॥१७॥ और उन्हे निर्मल पाण्डुक शिलाके ऊपर जगमगाते सिंहासनपर बैठाकर क्षीरसागरके जलसे भरे हुए स्वर्णके कलशो से भगवान्‌का अभिषेक किया ॥१८॥ इसके बाद इन्द्रने भगवान् को उत्तम वस्त्र आभूषण अलंकार आदि पहनाये और सभी इन्द्रो ने भगवान्‌को प्रणाम कर स्तुति की तथा सुमेरु पर्वतसे नगरमें ले आये ॥१९॥ फिर इन्द्राणीने अपने पतिके करकमलोंसे भगवान् को लेकर, मायामयी बालकको हटाकर माताकी गोदमें रख दिया ॥२०॥ तथा सभी इन्द्र भगवान्‌के माता-पिताकी विधिपूर्वक

गुरु जिनस्य देवेन्द्रा. पूजयित्वा यथाविधि ।
आक्रीड्य नृत्यमानन्दं तदा स्वं ययुरालयम् ॥२१॥

भाज्यं त्रैलोक्यपूजार्यं लब्ध्वा तनयमुत्तमम् ।
भगवत्पितरौ प्रीतिमतुलां समवापतु ॥२२॥

लक्ष्मी. काश्यपवंशस्य परां वृद्धिं दिने दिने ।
ययौ समन्ततो यस्माज्जाते त्रिभुवनेश्वरे ॥२३॥

तस्मादिन्द्रै· पितृभ्यां च दर्शनात्तृप्तलोचनै ।
वर्द्धमान इति श्रीमान्नाम चक्रे मुदा विभोः ॥२४॥

प्रजानां परमप्रीतिं कुर्वन् प्रतिदिनं विभु· ।
त्रिज्ञानी ववृधे कान्त्या सौम्यया बालचन्द्रवत् ॥२५॥

क्रीडन्तमन्यदोद्याने कुमारैर्बहुभिर्जिनम् ।
रौद्रेण फणिरूपेण कश्चिद्देवो विभीषित. ॥२६॥

तदत्रासात्स्वयं त्रस्तो नत. कृत्वातिपूजनम् ।
वीरो नाम्नाऽयमित्याख्यामकरोदस्य विश्रुताम् ॥२७॥

फुल्लाम्भोजरजोगन्धि स्वप्रभापरिवेषिणी ।
आसीत्तस्य तनु कान्तिव्यक्तव्यञ्जनलक्षणा ॥२८॥

न किञ्चिदद्भुतं तस्य बभूव परमद्भुतम् ।
नानाऽद्भुतं वृथैवासीत्पश्यतां चरितं निजम् ॥२९॥

मुदिता वीक्ष्यमाणास्तं प्रजास्तद्गुणरञ्जिता· ।
आत्मोपार्जितसत्पुण्यविपाकमिव मेनिरे ॥३०॥

धनदेन समानीतैर्विचित्रैर्वासवाज्ञया ।
भोगैररमत प्राज्यैरतीवसुखकारणै ॥३१॥

राज्यलक्ष्मीशितापाङ्गप्रणयाबद्धलोचनै ।
कामितो नैव च क्षेमे प्रथमज्ञानचोदित ॥३२॥

पूजा कर आनन्द नामक नाटक खेलकर अपने-अपने स्थान चले गये ॥२१॥

त्रैलोक्यमे पूजाके योग्य पात्र श्रेष्ठ पुत्रको पाकर भगवान्‌के माता-पिता अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२२॥ त्रिभुवनपतिके उत्पन्न होने से काश्यप वशकी लक्ष्मी दिनों-दिन चारो ओर खूब बढ़ने लगी, इसलिए तथा उनके दर्शनसे इन्द्र लोग और भगवान्‌के माता-पिताके नेत्र तृप्त हो गये, इन कारणोसे भगवान्‌का नाम प्रसन्नता-पूर्वक 'श्रीवर्धमान' रखा गया ॥२३-२४॥ तीन ज्ञानके धारी वे भगवान् जनताको प्रतिदिन परम प्रसन्नता देते हुए, बाल-चन्द्रमा के समान सौम्य कान्तिसे बढ़ने लगे ॥२५॥

एक समय भगवान् बहुतसे राजकुमारोंके साथ खेल रहे थे। उसी समय उन्हे किसी देवने भयङ्कर सर्पका रूप धारणकर डरवाया ॥२६॥ पर भगवान्‌के न डरनेसे वह स्वयं डर गया और उन्हें नमस्कार कर पूजा को तथा उनका 'वीर' यह प्रसिद्ध नाम रख दिया ॥२७॥ भगवान्‌के शरीरकी सुगन्धि फूले हुए कमलकी गंधके समान थी, प्रभामण्डलसे व्याप्त उनके शरीरकी कान्ति थी तथा उनका शरीर अनेक प्रकट शुभ चिह्नोसे युक्त था ॥२८॥ भगवान्‌के लिए अत्यन्त अद्भुत वस्तु भी कुछ भी अद्भुत न थी पर भगवान्‌के अद्भुत चरितको देखनेवालोंके लिए अन्य दूसरे अद्भुत व्यर्थ ही थे ॥२९॥ उनके गुणोंमें मुग्ध जनता उन्हे देख-कर बहुत प्रसन्न होती थी और सब लोग उनके दर्शनको अपने पूर्वजन्ममे उपार्जित उत्तम पुण्यका फल ही मानने लगे ॥३०॥

वे भगवान् इन्द्रकी आज्ञासे कुबेर-द्वारा लाये गये अत्यन्त सुख देनेवाले, विचित्र प्रकारके अनेकों भोगोसे सुखपूर्वक रहने लगे। राज्य-लक्ष्मीके तीक्ष्ण कटाक्षो और स्नेह भरे नेत्रोसे चाहे-जानेपर भी वे भगवान् मतिज्ञानावरणके क्षयोपशम हो जानेपर

तदा लौकान्तिका देवा नियोगात्तमवोधयन् ।
उन्मूलनाय दोपाणां क्षणोऽयमिति ते क्षम. ॥३३॥

ससां मागाभिनि:क्रान्तेर्जनतायै धनेश्वर· ।
ददौ किमिच्छकं दानं जिनं वज्रधराज्ञया ॥३४॥

इन्द्रा स्वविष्टराकम्पैर्विदित्वाऽवधिलोचना ।
आययु परिवारै स्वै. सहसा कृतभूषणा. ॥३५॥

कुम्भैरष्टसहस्रेण पयोऽर्णवजलोदरै. ।
अभिषिच्य जिनं वासो भूषणाद्यैरभूषयत् ॥३६॥

रम्यां चन्द्रप्रभां नाम्ना चन्द्रांशुद्युतिहारिणीम् ।
निर्वर्त्य शिविकां भक्त्या राजराज. समानयत् ॥३७॥

इन्द्रविज्ञापितेनेशा समारूढां मनोहराम् ।
उत्क्षिप्तां क्षत्रियै· पूर्वं तामूहुस्त्रिदशेश्वरा ॥३८॥

सेवितो गीतनृत्याद्यै· सन्मोदैरप्सरोगणै ।
भुवस्तिलकमुद्यानं ज्ञातखण्डमवाप स· ॥३९॥

अवतीर्य ततस्तत्र निरस्तवसनाधिक. ।
शिलायामासित· केशानलुञ्चत्पञ्चभिर्ग्रहै ॥४०॥

दीक्षां षष्ठेन भक्तेन गतसङ्गा दिगम्बर ।
उपेतो राजतापास्तघनरोध इवांशुमान् ॥४१॥

हैमे पटलके जैनान्केशानादाय वज्रभृत् ।
अभ्यर्च्य निदधे क्षीरपयोधेरमले जले ॥४२॥

दीक्षासमयसम्प्राप्तमन.पर्ययलोचनम् ।
इन्द्रा. सपरिवारास्तं प्रणिपत्य दिवं ययु ॥४३॥

(गृहस्थावस्थामें) ठहर न सके ॥३१-३२॥ उस समय नियोग पूरा करनेके लिए लौकान्तिक देव आये और भगवान्‌को समझाने लगे कि हे भगवन्, दोषोंको नष्ट करनेके लिए तुम्हारे लिए यही क्षण अच्छा है ॥३३॥ इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने जिन भगवान्‌की दीक्षा के एक वर्ष पहले ही से जनताके लिए 'जो चाहो उसी वस्तु' का दान दिया ॥३४॥ अवधिज्ञानधारी इन्द्रोंने अपने-अपने आसनोंके कंपनेसे भगवान्‌का दीक्षा-कल्याणक जाना और जल्दीसे सजधज कर अपने-अपने परिवारोंके साथ वहाँ आये ॥३५॥ तथा भगवान्‌का क्षीरसागरके जलसे भरे एक हजार आठ घड़ोंसे अभिषेक किया और उन्हे वस्त्र आभूषण आदिसे सजाया ॥३६॥ तब कुबेर चन्द्रमाकी किरणोंकी चमकको मात करनेवाली चन्द्रप्रभा नामकी रमणीय पालकीको बनाकर भक्तिपूर्वक वहाँ लाया ॥३७॥ और इन्द्रके निवेदन करनेपर वे भगवान् उस मनोहर पालकीमे बैठे,जिसे पहले पहल क्षत्रिय लोग उठाकर ले चले और फिर देवता लोग उसे लेकर चले ॥३८॥ बहुत प्रसन्न देवाङ्गनाओं-द्वारा गीत, नृत्य आदिसे सेवित वे भगवान् पृथिवीके तिलकके समान सुन्दर ज्ञातखण्ड नामके उद्यानमे पहुँचे ॥३९॥ फिर पालकीसे उतरकर उन्होंने वस्त्र-भूषण उतार दिये और एक शिला-पर बैठकर पञ्चमुष्टिसे अपना केशलोच कर लिया ॥४०॥ फिर उन्होंने समस्त परिग्रह छोड़कर षष्ठोपवास पूर्वक दीक्षा ले ली और स्वाभाविक दीप्तिसे वे ऐसे मालूम होते थे जैसे बादलोंके हट जानेसे सूर्य प्रभान्वित होता है ॥४१॥ तब इन्द्रोंने भगवान्‌के बालोंको सोनेकी डिबियामें रखकर और उनकी पूजाकर उन्हे क्षीरसागरके निर्मल जलमे क्षेप दिया ॥४२॥ दीक्षा लेते ही भगवान्‌को मनःपर्यय ज्ञान हो गया तब इन्द्रोंने अपने सब देवों तथा देवियोंके साथ तपः-कल्याणककी पूजा की तथा वे स्वर्गलोक लौट गये ॥४३॥

### शिखरिणीवृत्तम्

जराऽऽवर्त्तोद्भ्रान्तिं वहुविधरुजाग्राहकलितं
भयक्लेशोद्वीचिं मरणवहुलालोलसलिलम् ।
हृतं तृष्णावातैर्जननजलधेस्तोयमखिलं
द्रुतं नेतुं येते गुणकिरणमालो जिनरविः ॥४४॥

इति श्रीवर्द्धमानचरिते पुराणसंग्रहे भगवदभिनिष्क्रमणं नाम चतुर्थः सर्गः समाप्तः ॥

---

अनेक गुणरूपी किरणोंसे विभूषित उन जिन रूपी सूर्यने, ऐसे संसार-समुद्रके सारे जलको शीघ्र ही सुखा देनेका प्रयत्न किया जहाँ कि वृद्धावस्थारूपी भँवरोंके चक्कर हैं, जो कि नाना प्रकारके रोगरूपी ग्राहोंसे व्याप्त है तथा भय और क्लेश रूपी लहरोंसे भरा है, एवं जहाँ सदा मरणरूपी चचल जल है और जो तृष्णारूपी वायुओंसे संचालित है ॥४४॥

इस प्रकार पुराणसारसग्रहके वर्धमानचरितमे भगवान्का
दीक्षा-कल्याणक नामक चौथा सर्ग समाप्त हुआ ।

## पञ्चमः सर्गः

कूलग्रामे ततो धीमानपरेद्युर्दयापरः ।
स्थितये संयमादीनां भिक्षावृत्तिमनुष्ठितः ॥१॥

प्रतिलभ्य जिनं तत्र सन्तुष्टः कूलभूपतिः ।
प्रणिपत्य समभ्यर्च्य ददौ पायसमादृत. ॥२॥

वसुधाराऽपतद् व्योम्नः दिवि दुन्दुभयोऽनदन् ।
ववेलु शीतला वाता दिव्यगन्धविसर्पिण. ॥३॥

वृष्टिः पपात पुष्पाणां चन्दनाऽमृतगर्भिणाम् ।
अहो दानगिर. प्रीतैश्चक्रिरे बहुशोऽमरै. ॥ ४ ॥

तनुसन्धारणामात्रामदोषा शुद्धदातृकाम् ।
आदाय युक्तितो भिक्षामष्टिकास्थानमाश्रित. ॥ ५ ॥

तत. सुरगणा प्रीता वचनै श्रवणामृतै. ।
पात्रदानं प्रशंसन्तः कूलं च समपूजयन् ॥ ६ ॥

कर्मणां संहति क्षिप्रं क्षयं याति यथा यथा ।
स्वतपोभावनायत्नः स बभूव तथा तथा ॥ ७ ॥

विश्वजीवनिकायेषु दयाविततमानस. ।
वर्षास्वेकत्र योगेन चातुर्मास्यं जिनोऽवसत् ॥ ८ ॥

ततोऽपरेषु मासेषु ज्ञानध्यानतपोरत ।
व्यहरत्पुरराष्ट्राणि बभूवाऽप्रतिबन्धन' ॥ ९ ॥

निशायामुज्जयन्त्या तु कायोत्सर्गेण संस्थितम् ।
गौरी नाम व्रजन्योगी दृष्ट्वाऽमर्षान्न तम् ॥१०॥

# पञ्चम सर्ग

किसी दूसरे दिन दयालु बुद्धिमान् भगवान् संयम आदिकी रक्षाके लिए भिक्षा लेनेको कूल ग्राममे गये ।।१।। वहॉके कूल नामक राजाने भगवान्को अपने यहॉ आया हुआ जानकर उन्हे नमस्कार कर पूजा की और आदरपूर्वक खीरका आहार दान दिया ।।२।। तब वहॉ पञ्च आश्चर्य हुए—पहला, आकाशसे धनकी वृष्टि हुई, दूसरा, आकाशमे दुन्दुभियॉ बजने लगी, तीसरा, शीतल एव दिव्य सुगन्धिको फैलानेवाली वायु बहने लगी, चौथा चन्दन-की सुगन्धि और अमृतसे भरे फूलोकी वृष्टि होने लगी, पॉचवॉ, देवताओने प्रसन्न होकर 'अहो दान, 'अहो दान' इस प्रकार बहुत बार शब्द किये ।।३-४।। भगवान् शुद्ध दातासे दी गई निर्दोष भिक्षाको शरीर धारण मात्रके लिए लेकर अष्टिका नामक स्थानमें योग पूर्वक ठहर गये ।।५।। उस समय देवोने प्रसन्न होकर कानो-को प्रिय लगनेवाले वचनोंसे योग्य-पात्रमे दिये गये दानकी प्रशंसा की और उस कूल राजाकी पूजा की ।।६।।

वे भगवान् जितनी जल्दी यह कर्मराशि क्षीण हो जाये तद्-नुरूप ही उत्तम तप और आराधना करनेमे प्रयत्नशील हुए ।।७।। तथा संसारके सभी प्राणियोंपर दयासे चित्तको व्याप्त कर अर्थात् दयाभावसे वर्षाकालके चार महीनोमे वे एक ही जगह योग-धारण कर रहते थे ।।८।। और उसके अतिरिक्त दूसरे महीनोमें ज्ञान ध्यान तपमें लवलीन वे भगवान् बे रोक-टोक नगरो और देशोमे लोगोको धर्मोपदेश देते हुए भ्रमण करने लगे ।।९।।

एक समय ये उज्जयिनी नगरमे रात्रिके समय कायोत्सर्ग धारण कर बैठे थे। वहॉ गौरीके साथ घूमते हुए योगी (सात्यकि

वेतालफणिसिंहादिरूपं विद्याबलेन तु ।
कृतवान्भीषणस्तत्र तस्य धैर्यं परीक्षितुम् ॥११॥

चलितुं तमशक्तः सन् पूजां कृत्वाऽभिधानताम् ।
दत्वाऽपि च महावीरमित्यगात्स निजालयम् ॥१२॥

अन्यदा जृम्भिकग्रामे ऋजुकूलनदीतटे ।
मनोहरवने सालवृक्षाधः स्थगिलातले ॥१३॥

षष्ठभक्तं समादाय शुक्लध्यानमुपेयिवान् ।
आरोहत्क्षपकश्रेणीं जिगीषायै रजोद्विषाम् ॥१४॥

ध्यानाच्चिच्छतिमोहादिघातिकर्मचतुष्टयम् ।
आहूय केवलज्ञानमपराह्णे स लब्धवान् ॥१५॥

ततो ज्ञात्वा तदुद्भूतिं लोकत्रितयकम्पिनीम् ।
इन्द्राः देवगणोपेता आययुः सविभूतयः ॥१६॥

नाथं प्रदक्षिणीकृत्य स्तवं. स्तुत्वा स्तुते पदम् ।
प्रणिपत्य मुदा मूर्ध्ना पूजयित्वा गता दिवम् ॥१७॥

दिव्यध्वनिसमुत्पत्तिं ज्ञात्वोपायेन गोतमम् ।
आनीतवांस्तदा नक्रः स बभूव गणीश्वर ॥१८॥

प्रतिपद्दिनपूर्वाह्णे कृष्णे श्रावणमासि च ।
षट्सप्तवासरैर्जातो दिव्यध्वनिविनिर्गमः ॥१९॥

स वाचां मध्यमां प्राप्य तीर्थोत्पादनकारणाम् ।
महासेनवनोद्यानं समाध्यासितवान् विभुः ॥२०॥

ततः स्वतनुभूपादिद्युतिचक्रविसर्पणैः ।
द्योतयन्तो दिशोऽशेषा आययुर्देवाः समन्ततः ॥२१॥

नामके) महादेवने उन्हें देखा ॥१०॥ उस रुद्रने भगवान्के धैर्यकी परीक्षा करनेके लिए अपने विद्याबलसे वेताल, सर्प, सिंह आदि के रूप धारण किये, पर वह उन्हें डिगानेमें असमर्थ रहा। फिर उनकी पूजाकर, उनका 'महावीर' नाम रखकर वह अपने स्थान चला गया ॥११-१२॥

एक समय भगवान् ऋजुकूला नदीके किनारे जृम्भिक ग्रामके पास मनोहर नामक वनमें एक सालवृक्षके नीचे शिलापर बैठे थे ॥१३॥ वहाँ उन्होंने षष्ठोपवास पूर्वक शुक्ल ध्यान प्राप्त किया, तथा कर्म शत्रुओंको जीतनेके लिए क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ हुए ॥१४॥ और अपनी ध्यानरूपी अग्निमें मोहनीय आदि चार घातिया कर्मोंकी आहुति देकर दोपहरके बाद केवलज्ञान प्राप्त किया ॥१५॥ तब तीनों लोकोंको कम्पन करनेवाले केवल ज्ञानको उत्पन्न हुआ जानकर सभी इन्द्र, देवोंके समूहके साथ, बड़े वैभवसे वहाँ आये ॥१६॥ और प्रदक्षिणा कर स्तुति योग्य उन भगवानकी स्तुति की तथा प्रसन्नतापूर्वक सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार कर तथा पूजाकर स्वर्गलोक चले गये ॥१७॥

भगवान्की दिव्यध्वनि निकलनेका क्या कारण होना चाहिये यह विचार कर इन्द्र गौतम ( इन्द्रभूति ) को वहाँ किसी उपायसे ले गया। वे गौतम भगवान्के प्रथम गणधर हुए ॥१८॥ भगवान्की दिव्यध्वनि श्रावण महीनेके कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाके दिन पूर्वाह्णमें निकली और छै सात दिन तक बराबर चलती रही ॥१९॥ उन भगवान्ने तीर्थ-प्रवर्तन करनेके लिए हेतुभूत मध्यमा वाणीका अवलम्बन लिया और महासेन वन नामक उद्यानमें आकर बैठ गये ॥२०॥ तब अपने शरीरके आभूषण आदिके प्रकाश-मण्डल ( जगमगाहट ) को फैलाते हुए और समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए चारों ओरसे देवता लोग वहाँ आये ॥२१॥

नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि सुभगा मारुता ववुः ।
पुष्पवृष्टिर्दिशो गन्धैर्वासयन्ती दिवोऽपतत् ॥२१॥
प्रकृत्य प्रातिहार्याणि महं च परमाद्भुतम् ।
अध्यासत पिबन्तस्ते जिनवाक्यसुधारसम् ॥२२॥
तत्शिष्यैर्जनैरन्यैर्दुरापं च जगत्त्रये ।

उस समय आकाशसे दुन्दुभियाँ वजने लगी, सुगन्धित वायु वहने लगी और दिशाओंको सुगन्धिसे सुगन्धित करती हुई आकाशसे पुष्पवृष्टि गिरने लगी ॥२२॥ सभी देवता आठ प्रातिहार्योकी रचना कर और अत्यन्त अद्भुत पूजाकर भगवान्के धर्मोपदेश रूपी अमृतका पान करते हुए समवशरणमें बैठ गये ॥२३॥ तीनो लोकोंमे अपात्र लोगोके लिए दुर्लभ उस वाणीको इन्द्रभूति आदि गणधरोने जीवादि तत्त्वमे सन्देह रहित होकर सुना ॥२४॥

चेटक राजाकी छठवीं पुत्री चन्दनाने भगवान्को प्रणाम कर तथा शीघ्र ही संसारसे विरक्त हो जिनदीक्षा धारण कर ली ॥२५॥ महासेन आदि राजा लोग भी श्रावक हो गये और प्रियङ्गुदेवी आदि रानियाँ अज्ञानरहित हो श्राविकाएँ हो गईं ॥२६॥ वे भगवान् मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका, इन चार संघोके स्वामी थे। उन्होने अपने श्रेष्ठ ज्ञानवलसे देवताओ और मनुष्योकी सभामे जनताका संशय नष्ट किया ॥२७॥ संसार-सागरसे तरने योग्य भव्य जीवो को तारते हुए तथा प्राणिवर्गको उपदेश देते हुए वे जिनेन्द्र भूतल पर भ्रमण करने लगे ॥२८॥

सभी अतिशयोसे युक्त उन श्रीवर्धमान भगवान्के संघमे महाबुद्धि शाली ११ गणधर थे, ५०० मनःपर्यय ज्ञानधारी थे तथा सात सौ केवलज्ञानी मुनि थे, तेरह सौ अवधिज्ञानी मुनियोकी सख्या थी, विक्रियाऋद्धिधारी मुनियोकी सख्या नौ हजार नौ सौ थी, तथा परम तेजस्वी चौदह पूर्वधारी मुनि तीन सौ थे, एवं युक्तिवादी मुनि चार सौ थे, चन्दनादि छत्तीस हजार आर्यिकाएँ थीं तथा तीन लाख श्राविकाएँ थीं और एक लाख यशस्वी श्रावक थे ॥२९-३४॥

इस प्रकार चतुर्विध संघके साथ भ्रमण कर अन्तमे वे रत्नत्रय

अथाऽन्ते दर्शनज्ञानचारित्रविधिनायकः ।
आगत्य नगरीं पावां सहस्रद्ध्यचतुष्टय. ॥३५॥
शिलायां स्थितवानेकः प्रलम्बितकरद्वय' ।
भूत्वा योगी ततश्चक्रे शेषाणां कर्मणां क्षयम् ॥३६॥
ऊर्जस्य कालपक्षस्य चतुर्दश्यां निशि प्रभु' ।
कृतिं निष्ठाप्य षष्ठेन प्रत्यूषे प्राप निर्वृतिम् ॥३७॥
अथेन्द्रा देवसङ्घेन साकं सपदि सादराः ।
निशि तमांसि भिन्दन्तो रुचां चक्रैः समाययुः ॥३८॥
आत्मीयशक्तिसर्वस्वं दर्शयन्त इवाद्भुताम् ।
पूजां तस्य तनोश्चक्रुर्गन्धाम्बुरसवादिभि. ॥३९॥
ततो जिनकथासान्द्ररसरञ्जितमानसा. ।
उत्पाद्य पुण्यसद्रत्नं ययुर्नाकं यथायथम् ॥४०॥
स समा त्रिंशतं भोगे वने च द्वादशाऽवसत् ।
विजहार श्रिया जैन्या त्रिंशतं त्रिदशार्चित ॥४१॥
वैशाखशुक्लपक्षस्य दशम्यामाप केवलम् ।
श्रावणकृष्णपक्षादिदिने तीर्थप्रवर्तनम् ॥४२॥
अर्यमन्नभवदृक्षं स्वर्गावतरणादिषु ।
स्वातिश्च परिनिर्वाणे वर्द्धमानस्य धीमतः ॥४३॥
सप्तारत्निप्रमाणाङ्गं शरत्तपनतेजसम् ।
वर्द्धमानं जिनं मूर्ध्ना नमामि ज्वलितश्रियम् ॥४४॥

## शिखरिणीवृत्तम्

इतीयं नामावलिरुचिरकुसुमैः कान्तिरहितै-
र्यशोगन्धाऽऽमोदैः स्तुतिकिसलयोन्मिश्रसुभगै. ।
जिनस्याऽर्च्या भक्तिप्रचलितधियाऽकारि हि मया
क्षमा कार्या तस्यां गुणविरहितायामपि विदा ॥४५॥

निधिके स्वामी भगवान् पावा नगरीमें आये ॥३५॥ वहाँ एक शिलापर अकेले खड्गासनसे खड़े होकर उन भगवान्ने शेष कर्मोंको भी नष्ट कर दिया ॥३६॥ और उन्होंने कार्तिक महीनेकी कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिमे कृतकृत्य हो प्रातः काल मोक्ष प्राप्त किया ॥३७॥ तब इन्द्र लोग देवताओंके साथ शीघ्र ही रात्रिके अंधकारको अपनी प्रभामण्डलसे भेदते हुए अर्थात् लोकको प्रकाशित करते हुए भक्ति पूर्वक वहाँ आये ॥३८॥ तथा अपनी आत्मीय शक्तिका पूरा प्रदर्शन करते हुए उन लोगोने जल चन्दन पुष्प आदिसे भगवान्के शरीरकी अद्भुत पूजा की, ॥३९॥ और जिन भगवान्का गुण कीर्तन कर पुण्य लाभ कर प्रसन्नचित्त हो स्वर्गलोक चले गये ॥४०॥

उन भगवान्ने अपनी आयुके तीस वर्ष भोगोमें, १२ वर्ष तपस्यामें और तीस वर्ष तक इन्द्रोसे पूज्य अर्हन्त लक्ष्मी पाकर विहार किया ॥४१॥ उनने वैशाख शुक्ल दशमी तिथिके दिन केवलज्ञान प्राप्त किया था और श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको तीर्थ प्रवर्तन किया था। वर्धमान भगवान्के स्वर्गसे अवतरण आदिमें अर्यमा नामका योग था और मोक्ष जानेमें स्वाति नक्षत्र था ॥४२-४३॥ उनके शरीरकी ऊँचाई सात अरत्नि अर्थात् ३॥ हाथ थी। शरीरकी कान्ति शरद्कालीन सूर्यके समान थी। मैं प्रकाशमयी उन जिन वर्धमानको नमस्कार करता हूँ ॥४४॥

इस प्रकार भक्तिवश मैंने यशरूपी गन्धसे सुगन्धित और स्तुतिरूपी कोपलोसे सुशोभित (अलंकारादि) कान्तिसे रहित होने पर भी नामावलीरूपी मनोहर पुष्पोसे जिन भगवान्की पूजा की है। गुणोंसे रहित भी इस स्तुतिके संवंधमे सज्जन लोग मुझे क्षमा करें ॥४५॥

विद्यामे पारङ्गत देवाङ्गनाओका स्वामी इन्द्र भी जिनके थोड़े

गताऽन्तो विद्यानां त्रिदशवनितानामधिपति-
र्न शक्तो यस्यासीद्गुणलवमपि स्तोतुमखिलम् ।
महिम्नामाधारो भुवनविततध्वान्ततपन
स भूयान्नो वीरो जननजयसम्पत्तिजननः ॥४६॥

इति वर्द्धमानचरिते पुराणसारसंग्रहे भगवन्निर्वाणगमनं नाम पञ्चमः सर्गः समाप्तः ॥

गुणोकी भी पूरी तरहसे स्तुति करनेमे असमर्थ रहा, वे महिमाओ के आधार, संसारके अज्ञानान्धकारको दूर करनेमे सूर्यके समान वीर भगवान् हमलोगोके जन्म मृत्यु जीतनेवाली सम्पत्ति अर्थात् मोक्षको देनेवाले हो ॥४६॥

इसप्रकार पुराणसारसग्रहके वर्धमानचरितमे भगवान्का मोक्ष-गमन नामक पॉचवॉ सर्ग समाप्त हुआ ।

# महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रकाशन

## सिद्धान्तशास्त्र

| | | |
|---|---|---|
| महाबन्ध [भाग १] | प० सुमेरचन्द्र दिवाकर न्यायतीर्थ | १२) |
| महाबन्ध [भाग २-३] | प० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री | २२) |
| तत्त्वार्थवृत्ति | प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य | १६) |
| तत्त्वार्थराजवार्तिक [भाग १] | प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य | १२) |
| समयसार [अंग्रेज़ी] | प्रो० ए० चक्रवर्ती एम. ए. | ८) |
| सर्वार्थसिद्धि | प० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री | १२) |

## चरित

| | | |
|---|---|---|
| महापुराण [भाग १-२] | प० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य | २०) |
| उत्तरपुराण | प० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य | १०) |
| पुराणसंग्रह [भाग १-२] | प० गुलाबचन्द्र व्याकरणाचार्य | ४) |
| धर्मशर्माभ्युदय [धर्मनाथ-चरित] | प० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य | २) |
| जातकट्ठकथा [पाली] | प्रो० भिक्षु धर्मरक्षित | ९) |

## स्तोत्र, आचार

| | | |
|---|---|---|
| वसुनन्दिश्रावकाचार | प० हीरालाल जैन न्यायतीर्थ | ५) |
| जिनसहस्रनाम [स्तोत्र] | प० हीरालाल जैन न्यायतीर्थ | ४) |

## काव्य, न्याय

| | | |
|---|---|---|
| न्यायविनिश्चयविवरण [भाग १-२] | प्रो० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य | ३०) |
| मदनपराजय [काव्य] | प्रो० राजकुमार जैन, एम. ए. | ८) |

## कोष, छन्दशास्त्र

| | | |
|---|---|---|
| नाममाला सभाष्य | प० शम्भुनाथ त्रिपाठी | ३\|\|) |
| सभाष्यरत्नमंजूषा [छंदशास्त्र] | प्रो० एच० डी० वेलणकर | २) |

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस